शैक्षिक मंथन

(द्विभाषी मासिक)

शैक्षिक क्षेत्र की प्रतिनिधि पत्रिका

वर्ष : 10 अंक : 8 1 मार्च , 2018

(चैत्र, विक्रम संवत् 2074)

संस्थापक
स्व. मुकुन्द राव कुलकर्णी

संरक्षक
के.नरहरि

❖

परामर्श
डॉ. विमल प्रसाद अग्रवाल
जगदीश प्रसाद सिंघल

❖

सम्पादक
सन्तोष पाण्डेय

❖

सह सम्पादक
विष्णुप्रसाद चतुर्वेदी ❑ भरत शर्मा

❖

संपादक मंडल
प्रो. नन्दकिशोर पाण्डेय
डॉ. नाथू लाल सुमन
डॉ. एस.पी. सिंह
डॉ. ओमप्रकाश पारीक

❖

प्रबन्ध सम्पादक
महेन्द्र कपूर

❖

व्यवस्थापक
बजरंग प्रसाद मजेजी

प्रेषण प्रभारी
बसन्त जिन्दल ❑ नौरंग सहाय भारतीय
कार्यालय प्रभारी
आलोक चतुर्वेदी : 9782873467

प्रकाशकीय कार्यालय
82, पटेल कॉलोनी, सरदार पटेल मार्ग,
जयपुर (राज.) 302001
दूरभाष : 9414040403

दिल्ली ब्यूरो :
शैक्षिक महासंघ सदन, 606/13,
कृष्णा गली नं.9, मौजपुर, दिल्ली-110053
दूरभाष : 011-22914799

E-mail :
shaikshikmanthan@gmail.com
Visit us at :
www.shaikshikmanthan.com

एक प्रति 20/- वार्षिक शुल्क 200/-
आजीवन (दस वर्ष) 1500/-

पृष्ठ संयोजन : सागर कम्प्यूटर, जयपुर

शैक्षिक मंथन मासिक में प्रकाशित सामग्री से संपादक मण्डल का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

पर्यावरण संरक्षण और भारतीय संस्कृति ❑ डॉ. सुमन बाला

प्रकृति-संरक्षण और पर्यावरणीय अनुराग की चिरन्तन धारा है, भारतीय संस्कृति। प्रकृति का अनुराग हमारी पुरातन संस्कृति में इस कदर रचा बसा हुआ है और इस हद तक समाया हुआ है कि हम प्रकृति से जुदा मानव के अस्तित्व की कल्पना भी नहीं कर सकते। भारतीय मनीषियों ने समूची प्रकृति और प्राकृतिक शक्तियों को देवता स्वरूप में माना है और मानव को प्रकृति के अविभाज्य अंग के रूप में देखा है। प्रकृति से जुदा वह रह ही नहीं सकता है। हमारे भारतीय समाज को प्रारम्भ से ही एक समृद्ध संस्कृति की विरासत प्राप्त हुई है, जो सदैव से ही मनुष्य को सुसंस्कृत मानव बनाने हेतु उसके व्यवहार-प्रतिमानों को निर्देशित करती आयी है।

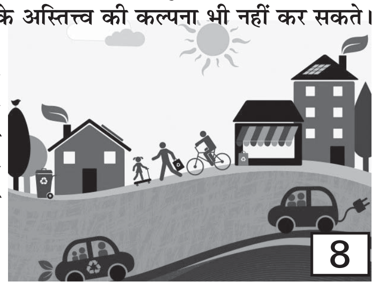

अनुक्रम

4.	वैश्विक स्वरूपा भारतीय संस्कृति	- सन्तोष पाण्डेय
6.	शंकराचार्य जयेन्द्र सरस्वती का महाप्रयाण	- सुरेन्द्र चतुर्वेदी
12.	प्रकृति संरक्षण का आधार : पर्यावरणीय संविधान	- प्रो. मधुर मोहन रंगा
15.	वैश्विक पर्यावरण संरक्षण में भारत की भूमिका	- डॉ. इन्दुबाला अग्रवाल
17.	प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण	- बजरंग प्रसाद मजेजी
19.	सनातन है भारतीय संस्कृति	- विष्णुप्रसाद चतुर्वेदी
24.	लोकतान्त्रिक भारत का वैश्विक उत्तरदायित्व	- आशुतोष जोशी
28.	आत्म-नियन्त्रण एवं सफलता	- प्रो. जमनालाल बायती
30.	परिसर मुक्त पढ़ाई	- नाज़ खान
34.	उपनिवेश-दर-उपनिवेश	- रमेश दवे
36.	अनुपयोगी होती जा रहीं पीएचडी डिग्रियाँ	- पी. पुष्कर
38.	बचपन के बहाने	- कालू राम शर्मा
40.	साक्षात्कार	
42.	गतिविधि	

Bharatiya Unit of Time ❑ Dr. TS Girishkumar

Brahma's total life span is 100 years, that is Brahma years. This is 313,528, 320,000, 000 years, and Brahma is fifty years now. The present Kaliyuga began at midnight of 17th February in 3012 BCE. Indeed, it is impossible for a society to make such calculations simply for nothing. Did our ancestors use such knowledge? It is difficult for us to imagine how our ancestors must have put this knowledge to use, but if they had no use for it, they would have never created such knowledge. If the world can look at the Hindu time calculation alone, leave alone all other knowledge tradition, they will have no hesitation or doubts in their minds to accept Bharat as Visva Guru.

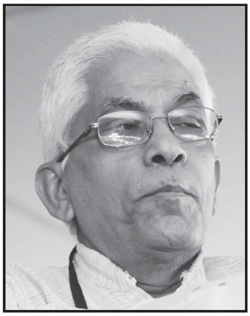

भारतीय संस्कृति में प्रकृति पर नियंत्रण के स्थान पर सहयोग का मार्ग अपनाया गया है। मानव के अस्तित्व को चिरकालीन बनाये रखने के लिये भारतीय संस्कृति व सोच, प्रकृति से उतना ही लेने पर बल देती है, जितना कि उसका पुनर्भरण किया जा सके। यह प्राकृतिक संसाधनों को क्षरण से बचाने का अद्‌भुत मार्ग है। आज संपूर्ण विश्व में जलवायु परिवर्तन की गंभीर समस्या है। ग्लोबल वार्मिंग व ओजोन परत में छिद्र का बढ़ना सम्पूर्ण मानव जाति के अस्तित्व के लिये चुनौती है। परन्तु प्रश्न यह है कि आखिर यह स्थिति उत्पन्न ही क्यों हुई। इसका सारा दोष पश्चिमी सभ्यता, संस्कृति एवं सोच को जाता है। पश्चिमी सभ्यता व सोच इस धारणा व विश्वास पर आधारित है कि ईश्वर ने समस्त प्राकृतिक संसाधन मनुष्य के जीवन को आरामदायक व कष्ट रहित बनाने के निमित्त दिये हैं।

वैश्विक स्वरूपा भारतीय संस्कृति

❑ **सन्तोष पाण्डेय**

संपादकीय

भारतीय संस्कृति विश्व की सबसे पुरानी एवं सनातन संस्कृति मानी जाती है। इसे प्रमाणित करने के लिये बहुत से ठोस प्रमाण समय-समय पर मिलते रहे हैं। जीव विज्ञान की अनेक आधुनिक विधियाँ भी पुरातत्व के तथ्य का समर्थन करती हुई कहती है कि होमो सेपियन्स से सुसंस्कृत मानव व संस्कृति का उदय भारत में ही हुआ। यह संभव है कि सुसंस्कृत मानव बनने की यात्रा भले ही पृथ्वी पर किसी एक स्थान से प्रारंभ हुई हो, परन्तु सर्वाधिक पुष्पित व पल्लवित भारत में हुई। पुरातत्ववेत्ताओं का भी मत है कि ऋग्वेद के एक श्लोक की पंक्ति 'कृणवन्तो विश्वमार्यम्' भी इसी ओर संकेत करती है। भारत से संस्कृति पूरे विश्व में विस्तारित हुई। अनेक भिन्नताओं के बावजूद विश्व संस्कृति एवं वैश्विक साझा संस्कृति में बदलती जा रही है। अनेक गंभीर वैश्विक समस्याओं पर सम्पूर्ण मानव समाज को दृष्टिगत कर एक समान वैश्विक दृष्टिकोण अपनाने एवं इसे सुलझाने के वैश्विक उपाय खोजे जा रहे हैं। कुछ समय पूर्व जर्मनी में सम्पन्न जलवायु परिवर्तन सम्मेलन में विश्व की साझा संस्कृति की एक झलक दिखी। जलवायु में परिवर्तन का संकट संपूर्ण मानव समाज का साझा संकट है, अत: इसका हल भी सम्पूर्ण मानव जाति के एक साझा प्रयास द्वारा ही निकाला जाना चाहिए। सभी वैश्विक समस्याओं का समाधान सभी देशों के साझा प्रयासों से हल करने का दृष्टिकोण महत्त्वपूर्ण होता जा रहा है।

मानव की समस्याओं पर भारतीय संस्कृति का दृष्टिकोण अनादि काल से ही वैश्विक रहा है। अध्यात्म पर आधारित भारतीय सोच मनुष्य का देह धारण किये आत्मा को ब्राह्मण में व्याप्त परमात्मा का अंश मानते हुये सम्पूर्ण वैश्विक वातावरण, पर्यावरण जिनमें वन, जल, वायु, सूर्य की रोशनी व ताप, पृथ्वी की मृदा आदि सम्मिलित है, को एकाकार मानती है। यही कारण है कि भारतीय संस्कृति में प्रकृति व प्राकृतिक उपहारों या संसाधनों को अत्यधिक सम्मान के भाव से देखा जाता है। यह जन-जन के मानस में परम श्रद्धा व आस्था के रूप में विद्यमान है। इसी सोच का परिणाम है कि भारतीय संस्कृति में प्रकृति पर नियंत्रण के स्थान पर सहयोग का मार्ग अपनाया गया है। मानव के अस्तित्व को चिरकालीन बनाये रखने के लिये भारतीय संस्कृति व सोच, प्रकृति से उतना ही लेने पर बल देती है, जितना कि उसका पुनर्भरण किया जा सके। यह प्राकृतिक संसाधनों को क्षरण से बचाने का अद्‌भुत मार्ग है। आज संपूर्ण विश्व में जलवायु परिवर्तन

की गंभीर समस्या है। ग्लोबल वार्मिंग व ओजोन परत में छिद्र का बढ़ना सम्पूर्ण मानव जाति के अस्तित्व के लिये चुनौती है। परन्तु प्रश्न यह है कि आखिर यह स्थिति उत्पन्न ही क्यों हुई। इसका सारा दोष पश्चिमी सभ्यता, संस्कृति एवं सोच को जाता है। पश्चिमी सभ्यता व सोच इस धारणा व विश्वास पर आधारित है कि ईश्वर ने समस्त प्राकृतिक संसाधन मनुष्य के जीवन को आरामदायक व कष्ट रहित बनाने के निमित्त दिये हैं। विज्ञान व तकनीकी विकास ने इस सोच को प्रकृति पर नियंत्रण स्थापित कर मानव की प्रकृति पर विजय के रूप में स्थापित किया। इससे प्राकृतिक संसाधनों का दोहन इनके विध्वंस की सीमा तक किया गया। संपन्नता की दौड़ में आगे निकलने के लिये विश्व भर में ऊर्जा का अत्यधिक उपभोग किया गया। ऊर्जा के अत्यधिक उपभोग तथा औद्योगीकरण व नई-नई तकनीक और उत्पादों के सृजन से पर्यावरण को गंभीर हानि पहुँचाने वाली ऊष्मा व गैसों पर स्वार्थवश ध्यान नहीं दिया गया। फलत: जनस्वास्थ्य व पर्यावरण तथा जलवायु परिवर्तनों से उत्पन्न संकट ने पश्चिमी सोच पर प्रश्न चिह्न लगाया और भारतीय सोच के प्रति गंभीरता का रुख अपनाया। आज प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण एवं पुनर्भरण के जितने भी प्रयास हो रहे हैं, भारतीय संस्कृति जो आर्य संस्कृति है, से प्रेरणा लेकर अपनाये जा रहे हैं। इनमें वन क्षेत्र के विस्तार, वृक्षारोपण, प्राकृतिक ऊर्जा (सोलर व विंड पावर), जल संरक्षण, तापमान नियंत्रण, प्राकृतिक वातावरण में आवास निर्माण यातायात व परिवहन में क्लीन एनर्जी का उपयोग, जलप्रदूषण, वायुप्रदूषण व ध्वनि-प्रदूषण को नियंत्रित करने के प्रयास जैसे सभी प्रयास भारतीय सोच व संस्कृति पर ही आधारित है। भौतिकवादी पश्चिमी दृष्टिकोण भी अब अध्यात्म की ओर झुक रहा है। भौतिक उत्पादों का अधिक से अधिक संतुष्टि प्राप्त करने के स्थान पर उपभोग को सीमित कर कम संसाधनों से सुख प्राप्त करने की सोच बढ़ रही है। जीडीपी व प्रतिव्यक्ति आय को अब विकास का सूचक मानने के स्थान सुख-सूचकांक (Happyness Index) पर बल दिया जा रहा है। ये सभी परिवर्तन भारतीय आर्य संस्कृति के विश्वव्यापी होने की पुष्टि करते हैं।

समूचे चराचर जगत या ब्रह्माण्ड को समझने व उसके लिये उपयुक्त दृष्टिकोण अपनाने में ज्ञान परंपरा का विशेष स्थान होता है। वैदिक काल से ही भारत की एक समृद्ध ज्ञान परंपरा रही है। प्राकृतिक वातावरण में संचालित गुरुकुलों, ऋषि-मुनियों ने तपोवन में तप-ध्यान द्वारा समूचे ब्रह्माण्ड, प्रकृति व पर्यावरण पर चिन्तन मनन कर भारतीय सोच व वैश्विक दृष्टि को पुष्ट किया। सृष्टि को समग्र रूप में समझने के लिये खगोल शास्त्र के माध्यम से ब्रह्माण्ड की रचना व रहस्यों को समझने का प्रयास किया। ब्रह्माण्ड के अनेक रहस्य जो आज स्पेस साईंस द्वारा खोजे जा रहे हैं, का विषद् उल्लेख वेद, उपनिषद् व पुराणों में मिलता है। उपचार चिकित्सा व शल्य चिकित्सा की समृद्ध पद्धति आयुर्वेद भी भारतीय ज्ञान परंपरा का विशिष्ट योगदान है। गणित के क्षेत्र में भी भारतीय गणित अग्रणी है। भाषा, व्याकरण व साहित्य के क्षेत्र में अतुलनीय योगदान है। भारतीय ज्ञान परंपरा ने कालगणना में विशिष्ट योग दिया है। भारतीय कालगणना में समय की सूक्ष्मतम इकाई से प्रारंभ कर युग-युगों तक की कालगणना की गई है।

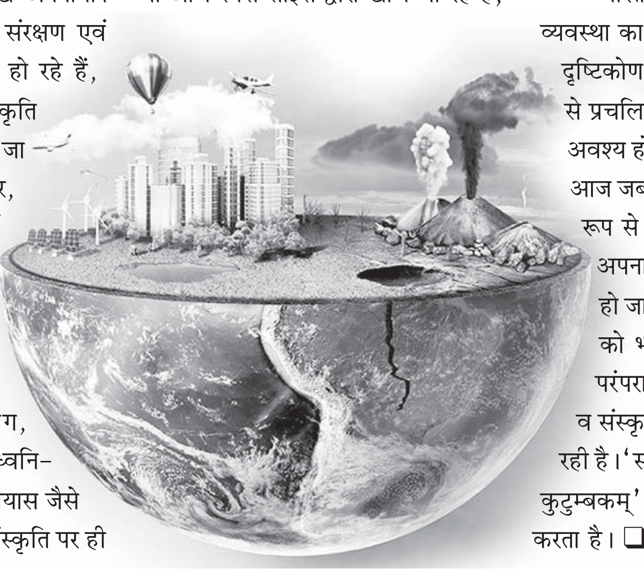

कालगणना में भिन्न-भिन्न प्रारंभिक समय इकाई मानने के प्रमाण हैं, परन्तु अंतिम निष्कर्ष सभी के एक समान हैं। कालगणना में मात्र पल, पक्ष, मास व वर्ष की गणना नहीं की गई वरन् युग-युगों की गणना कर प्रलयकाल तक की गणना एवं सृष्टि के पुन: प्रारंभ की गणना तक का उल्लेख है। आज की प्रचलित कालगणना-सेकेण्ड, मिनिट व घंटा, दिवस, मास व वर्ष के रूप में भारतीय कालगणना का स्वरूप सुलभ है। भारतीय कालगणना भारतीय ज्ञान परम्परा व संस्कृति का विशिष्ट अंग है, जिसे आज की कालगणना को समृद्ध बनाने में किया जा सकता है।

भारतीय संस्कृति व सोच, शिक्षा व्यवस्था का आधार था। पश्चिमी सोच व दृष्टिकोण के भारत में अन्यान्य कारणों से प्रचलित होने से यह दृष्टि से ओझल अवश्य हो गई, परन्तु अक्षुण्ण बनी रही। आज जब सम्पूर्ण विश्व प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से भारतीय संस्कृति व सोच को अपना रहा है, तब यह आवश्यक हो जाता है कि भारतीय शिक्षा पद्धति को भारतीय संस्कृति-सोच व ज्ञान परंपरा में ढाला जाय। भारतीय सोच व संस्कृति अत्यन्त उदार और वैश्विक रही है। 'सर्वे भवन्तु सुखिन:' व 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का भाव इसी पक्ष को पुष्ट करता है। ❑

भारत के इस संत की वैचारिक आक्रामकता ने समाज से लेकर राजनीति तक हर क्षेत्र को प्रभावित किया और अपनी सशक्त उपस्थिति दर्ज कराई। जो भी उनके संपर्क में आता, वो उनका ही होकर रह जाता। कई राजनेता भी उनसे मार्गदर्शन लेते रहते थे, उनमें भारत के पूर्व प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी प्रमुख हैं। स्वदेशी आंदोलन के प्रमुख नेता, पत्रकार और अर्थशास्त्री एस गुरुमूर्ति को तत्कालीन प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने सक्रिय राजनीति में आने के लिए आमंत्रित किया था, लेकिन शंकराचार्य जयेन्द्र सरस्वती के मना करने के कारण उन्होंने प्रधानमंत्री का यह आमंत्रण स्वीकार नहीं किया।

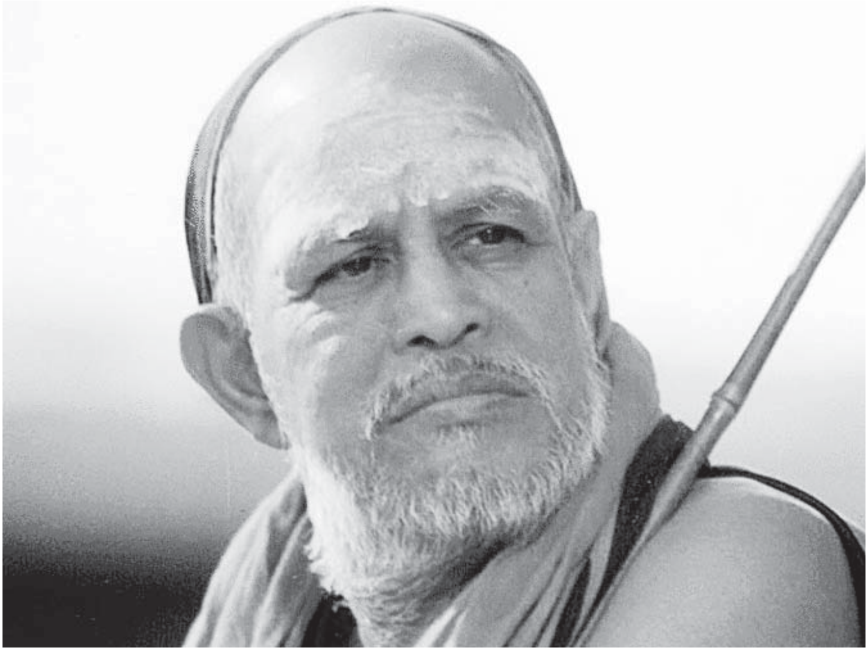

शंकराचार्य जयेन्द्र सरस्वती का महाप्रयाण

❑ सुरेन्द्र चतुर्वेदी

शंकर ब्रह्मलीन हो गये। काया की एक आयु होती है। जो इस काया में है, उसको यह काया छोड़नी ही होती है। भारतीय सनातन परंपरा में मृत्यु भी एक उत्सव ही है। अगले पड़ाव के लिए प्रस्थान है। काँची कामकोटी के शंकराचार्य जयेन्द्र सरस्वती सुधारवादी संत के रूप में हमेशा याद किये जाते रहेंगे। ईश्वर को मठ से निकाल कर सामान्य जन तक ले जाने के लिए वे हमेशा स्तुति के पात्र रहेंगे। 50 वर्ष का लम्बा समय उन्होंने शंकराचार्य की परंपरा में जीया।

अय्यर परिवार में जन्म लेने वाले स्वामी जयेन्द्र सरस्वती का सांसारिक नाम सुब्रमण्यम महादेव अय्यर था। उनका जन्म 18 जुलाई, 1935 को हुआ था। मात्र 19 वर्ष की आयु में उन्होंने संन्यास ले लिया था। काँची कामकोटी पीठ के 69 वें शंकराचार्य के रूप में उन्हें 22 मार्च, 1954 को शंकराचार्य चन्द्रशेखरेन्द्र सरस्वती ने अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर हिन्दू समाज को प्रखर राष्ट्रवादी संत दिया। उन्होंने ही उनका नामकरण जयेन्द्र सरस्वती के रूप में किया था।

हिन्दुत्व के प्रति गहरी आस्था रखने वाले और वेदों के ज्ञाता शंकराचार्य जयेन्द्र सरस्वती ने दक्षिण भारत में चल रही ईसाई मिशनरियों की गतिविधियों का जमकर प्रतिकार किया। मीनाक्षीपुरम् की घटना के बाद उन्होंने सचल मंदिर बनाकर उनको दलित बस्तियों में भेजा, उन्होंने आह्वान किया कि यदि दलित भगवान के मंदिरों तक नहीं आ सकते तो भगवान उन तक आयेंगे। उनके प्रभावी नेतृत्व के कारण ही बड़ी मात्रा में हो रहे धर्मान्तरण पर रोक लगी। मठ के नेतृत्व में बड़ी संख्या में विद्यालय और अस्पताल भी संचालित किये गये। उन्होंने मठ को सेवा मंदिर के रूप में स्थापित कर दिया। भारत के इस संत की वैचारिक आक्रामकता ने समाज से लेकर राजनीति तक हर क्षेत्र को प्रभावित किया और

अपनी सशक्त उपस्थिति दर्ज कराई। जो भी उनके संपर्क में आता, वो उनका ही होकर रह जाता। कई राजनेता भी उनसे मार्गदर्शन लेते रहते थे, उनमें भारत के पूर्व प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी प्रमुख हैं। स्वदेशी आंदोलन के प्रमुख नेता, पत्रकार और अर्थशास्त्री एस गुरुमूर्ति को तत्कालीन प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने सक्रिय राजनीति में आने के लिए आमंत्रित किया था, लेकिन शंकराचार्य जयेन्द्र सरस्वती के मना करने के कारण उन्होंने प्रधानमंत्री का यह आमंत्रण स्वीकार नहीं किया।

शंकराचार्य जयेन्द्र सरस्वती के प्रभाव को रोकने और उन्हें बदनाम करने के लिए कई षड्यंत्र रचे गए। जिनकी ओर भारत के पूर्व राष्ट्रपति श्री प्रणव मुखर्जी ने भी अपनी पुस्तक 'द कोएलिशन इयर्स 1996-2012' में इशारा किया है। शंकराचार्य को 11 नवम्बर, 2004 को दीपावली की रात उस समय गिरफ्तार किया गया, जब वो त्रिकाल पूजा कर रहे थे। दीपावली की रात को शंकराचार्य की गिरफ्तारी ने पूरे देश के हिन्दू समाज को आक्रोशित कर दिया था, इस घटना से नाराज प्रणव मुखर्जी ने मंत्रीमंडल की बैठक में यह मुद्दा उठाया था। उस समय राजनीतिक हल्कों में यह चर्चा जोरों पर थी, कि तमिलनाडू की मुख्यमंत्री जयललिता ने यू पी ए अध्यक्ष श्रीमती सोनिया गाँधी और उनकी सहेली शशिकला के कहने पर शंकराचार्य को गिरफ्तार करवाया है। हांलाकि बाद में अदालत ने शंकराचार्य जयेन्द्र सरस्वती को बेदाग बताते हुए बरी कर दिया।

रामजन्म भूमि मामले में भी शंकराचार्य ने प्रभावी मध्यस्थ की भूमिका निभाते हुए हिन्दू और मुसलमान धार्मिक नेताओं को विवाद का हल निकालने के करीब पहुँचा दिया था। लेकिन इसको धरातल पर लाया जाता इससे पहले ही उच्चतम न्यायालय में वाद दाखिल कर दिया गया और उनकी सम्पूर्ण मेहनत पर पानी फिर गया।

खैर, शंकर गये हैं, वापस आने के लिए। सनातन धर्म की यही परंपरा है, यही पहचान है। हिन्दुत्व के इस धर्म ध्वजवाहक ने धर्माधिकारियों और प्रणेताओं को एक कदम आगे और बढ़ाया है। उनके इस जीवन का स्पष्ट संदेश है कि ईश्वर मठों में नहीं जन सामान्य की कुटियाओं में बैठा है, उनके अभावों में है, उनकी पीड़ाओं में है। सामान्य जन की सेवा करो, वहीं ईश्वर तुम्हारा इंतजार कर रहा है। ❑

(निदेशक - सीएमआरडी)

प्रदेश महिला सम्मेलन जोधपुर में सम्पन्न

राजस्थान शिक्षक संघ (राष्ट्रीय) के तत्वावधान में 25 फरवरी, 2018 को अष्टम् प्रदेश महिला शैक्षिक सम्मेलन आदर्श विद्या मन्दिर प्रताप नगर, जोधपुर में आयोजित हुआ, जिसके प्रथम सत्र में प्रदेश अध्यक्ष प्रहलाद शर्मा ने संगठन की भूमिका व महिलाओं की समस्याओं व समाधान पर प्रकाश डाला। द्वितीय सत्र में प्रदेश मंत्री डॉ. अरुणा शर्मा ने संगठन की कार्य प्रणाली व महिला कार्यकर्त्ता निर्माण पर चर्चा की। उद्घाटन सत्र को सम्बोधित करते हुए, केन्द्रीय कृषि राज्य मंत्री गजेन्द्र सिंह शेखावत ने कहा कि राष्ट्र निर्माण में शिक्षिकाओं की अहम भूमिका है, उन्होंने विकसित राष्ट्र में प्राथमिक अहमियत बताते हुए शिक्षा का आधार याद करने की क्षमता एवं गणना करने की क्षमता बताया। साथ ही थॉमस एल्वा ऐडिसन का उदाहरण देते हुए बताया कि बार-बार असफल होने के बावजूद भी सकारात्मक सोच रखने से सफलता अर्जित की जा सकती है। मातृत्व अवकाश पर चर्चा करते हुए कहा कि कभी भी बदलाव किसी नेता नहीं किया बल्कि बदलाव हमेशा संगठन के कार्यकर्त्ताओं ने किया जैसे- श्रीराम ने वानर सेना के साथ मिलकर लंका पर विजय प्राप्त की। उन्होंने कहा कि विश्व के सभी देश बदलाव के लिए भारत की तरफ देखते हैं, इसलिए बदलाव के पहिये की गति को तेज करने का कार्य शिक्षक ही कर सकते हैं।

अध्यक्षता कर रही जनजाति क्षेत्रीय विकास राज्य मंत्री श्रीमती कमसा मेघवाल ने शिक्षिकाओं को सम्बोधित करते हुए कहा कि महिलाओं के बिना राष्ट्र का विकास संभव नहीं है। ऊँचाई के लिए डिग्रियाँ नहीं अनुभव आवश्यक है, साथ ही दो साल की चाइल्ड केयर लीव की घोषणा को जल्द ही क्रियान्विति करवाने की बात कही।

शिक्षक संघ के महामंत्री देवलाल गोचर ने संस्कार निर्माण व कुटुम्ब प्रबोधन की बात रखी। सम्मेलन के समारोप सत्र में डॉ. सुमन रावलोत, जोधपुर प्रांत कार्यवाहिका, राष्ट्र सेविका समिति का मार्गदर्शन प्राप्त हुआ। रामेश्वरी शर्मा, मंजु गर्ग, नेनू खत्री ने भी अपने विचार व्यक्त किये। सम्मेलन में राज्य भर से 650 महिला कार्यकर्त्ताओं ने भाग लिया।

पर्यावरण संरक्षण और भारतीय संस्कृति

❑ डॉ. सुमन बाला

प्रकृति-संरक्षण और पर्यावरणीय अनुराग की चिरन्तन धारा है, भारतीय संस्कृति। प्रकृति का अनुराग हमारी पुरातन संस्कृति में इस कदर रचा बसा हुआ है और इस हद तक समाया हुआ है कि हम प्रकृति से जुदा मानव के अस्तित्त्व की कल्पना भी नहीं कर सकते। भारतीय मनीषियों ने समूची प्रकृति और प्राकृतिक शक्तियों को देवता स्वरूप में माना है और मानव को प्रकृति के अविभाज्य अंग के रूप में देखा है। प्रकृति से जुदा वह रह ही नहीं सकता है। हमारे भारतीय समाज को प्रारम्भ से ही एक समृद्ध संस्कृति की विरासत प्राप्त हुई है, जो सदैव से ही मनुष्य को सुसंस्कृत मानव बनाने हेतु उसके व्यवहार-प्रतिमानों को निर्देशित करती आयी है।

प्रकृति मनुष्य की जननी है। मनुष्य का हित प्रकृति के साथ समरस होने में है, उसके साथ सहजीवन करने में है। मनुष्य इस धरती पर अकेला नहीं है। उसके चारों ओर का वातावरण, जिसमें अनेक प्रकार के पेड़-पौधों, जीव-जन्तुओं के साथ-साथ वहाँ पाये जाने वाले भौतिक कारकों (वायु, जल, मृदा) के साथ उस स्थान की जलवायु, तापमान, आर्द्रता, इत्यादि भी उसके पर्यावरण के भाग हैं। मनुष्य के पर्यावरण में उसके अस्तित्त्व, वृद्धि तथा कल्याण को प्रभावित करने वाली सभी परिस्थितियाँ सम्मिलित हैं, जो न केवल भौतिक वातावरण का निर्माण करती हैं, अपितु उसके सामाजिक-सांस्कृतिक और आध्यात्मिक पर्यावरण का निर्माण भी करती हैं। मनुष्य को इस प्राकृतिक वातावरण ने प्रारम्भ से ही जीवनदायिनी शक्ति प्रदान की है। प्रकृति के स्रोतों और संसाधनों का प्रयोग करते हुए तथा उनसे पोषक तत्त्वों को ग्रहण कर मनुष्य ने सभ्यता के पायदानों को लांघते हुए आज सभ्य-शिष्ट व सुसंस्कृत कहलाने का गौरवपूर्ण दर्जा प्राप्त किया है। सभी प्राणियों में मनुष्य की चेतनता अपना विशिष्ट स्थान रखती है। मनुष्य ने सभ्यता और संस्कृति का विकास किया, जिसके परिणामस्वरूप लाभ के साथ-साथ हानि भी हुई हैं। पर्यावरण की खोज एवं ज्ञान की शुरुआत के साथ-साथ मनुष्य ने प्रकृति पर अपना नियन्त्रण बढ़ाया। उसने इस संसार को अधिक से अधिक अपनी आवश्यकताओं के अनुकूल बनाया। परन्तु जैसे-जैसे मनुष्य का अपने पर्यावरण पर नियन्त्रण बढ़ता गया और वह दुनिया को अपने अनुकूल बनाता गया, वह ज्ञान के इस क्षेत्र से विमुख होता गया कि उसका हित प्रकृति के साथ सहकारिता और समरसता से जीवन जीने में है न कि उस पर अपना आधिपत्य जमाकर उसके स्रोतों और संसाधनों का दोहन करने में है। आज मनुष्य के ज्ञान का यह क्षेत्र इतना कम हो गया कि उसके क्रियाकलाप पर्यावरण-समरसता से पूर्णतः विमुख हो गये, जिससे निरन्तर पर्यावरण का क्षरण अप्रत्याशित गति से हो रहा है। इस बढ़ते पर्यावरणीय असंतुलन की स्थिति को सभी को समझना होगा। अपने

प्राकृतिक पर्यावरण की देखभाल और संरक्षण भारतीय संस्कृति के अनुरूप करना आवश्यक ही नहीं अपितु अनिवार्य है। पर्यावरण-संरक्षण हेतु मानव जाति को अपनी जड़ों को समझने और अपने प्राकृतिक आवास से संगति बिठाने के लिए उसकी अच्छी तरह देखभाल की जरूरत है।

प्रकृति-संरक्षण और पर्यावरणीय अनुराग की चिरन्तन धारा है, भारतीय संस्कृति। प्रकृति का अनुराग हमारी पुरातन संस्कृति में इस कदर रचा बसा हुआ है और इस हद तक समाया हुआ है कि हम प्रकृति से जुदा मानव के अस्तित्त्व की कल्पना भी नहीं कर सकते। भारतीय मनीषियों ने समूची प्रकृति और प्राकृतिक शक्तियों को देवता स्वरूप में माना है और मानव को प्रकृति के अविभाज्य अंग के रूप में देखा है। प्रकृति से जुदा वह रह ही नहीं सकता है। हमारे भारतीय समाज को प्रारम्भ से ही एक समृद्ध संस्कृति की विरासत प्राप्त हुई है, जो सदैव से ही मनुष्य को सुसंस्कृत मानव बनाने हेतु उसके व्यवहार-प्रतिमानों को निर्देशित करती आयी है। हमारी संस्कृति का प्रारम्भिक स्वरूप तपोवनी था। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने तो भारतीय संस्कृति को 'अरण्य संस्कृति' कहा है। तपोवन में पालित-पोषित हुई इस संस्कृति में अध्यात्म पक्ष भी प्रबल था। हमारी संस्कृति प्रकृति के प्रत्येक पक्ष को लेकर संवेदनशील रही है। वन में प्रकृति का अटूट खजाना है और वन (यदि शुद्ध हो तो) शान्ति का भण्डार है। भारतीय मन ने सदैव वन की वन्दना की है और वन ने उसे सम्बल भी दिया है, सहारा भी, शक्ति दी है और साधना भी, राग भी दिया और वैराग्य भी दिया है। ये वन ही है जिसने अपनी सारी सम्पदा मनुष्य के लिए जुटाकर रख दी और प्रकृति एवं संस्कृति का मेल संभव हो पाया। भारत के वनवासी मन ने ही संस्कृति की रचना की है। इसीलिए हमारे प्राचीन धर्मग्रन्थों में संस्कृति का प्रकृति, वन एवं पेड़-पौधों से गहरा सम्बन्ध रहा है। हमारी संस्कृति का मूल आयाम है कि हम पोषण करते हैं, शोषण एवं विध्वंस नहीं। पोषण से सन्तुलन बना रहता है, लेकिन शोषण से विध्वंस और असन्तुलन होता है। आज के युग में भारतीय संस्कृति के इन मूल आयामों को अपनाकर प्रकृति से सन्तुलन की आवश्यकता है। आज आवश्यकता प्रकृति से प्राप्त होने वाले उपयोगी संसाधनों (जल, वायु, वन, खनिज इत्यादि) की उपादेयता को समझ कर प्रकृति एवं पर्यावरण की सुरक्षा करने और उसे संरक्षित करने की है। पर्यावरण-संरक्षण तभी संभव हो पायेगा जब हम वर्तमान की भौतिकवादी संस्कृति को त्यागकर अपनी भारतीय संस्कृति को पूर्णतः अपनायेंगे और पृथ्वी सूक्त में अथर्ववेद में वर्णित ''हे धरती माँ, जो कुछ मैं तुझसे लूँगा वह उतना ही होगा जिसे तू पुनः पैदा कर सके। तेरे मर्मस्थल पर या तेरी जीवन शक्ति पर कभी आघात नहीं करूँगा'' इस वचन का पालन करेंगे। प्रकृति मानव की सारी बुनियादी आवश्यकताएँ तो पूरी कर सकती है परन्तु मनुष्य की भोग्यत्व-भावना और तृष्णा की तुष्टि कदापि नहीं कर सकती। गाँधी जी की दृष्टि में भी - ''यह धरती अपने प्रत्येक निवासी की आवश्यकता को पूरा करने के लिए यथेष्ट साधन उपलब्ध करवाती है, लेकिन हर व्यक्ति के लालच की पूर्ति नहीं कर सकती।'' मनुष्य का लालच ही प्रकृति का शोषण कर पर्यावरणीय प्रदूषण व संसाधनों के दोहन का कारण बनकर उसके सन्तुलन को गड़बड़ करता है, जिसका परिणाम उसे अवश्य भुगतना पड़ता है। क्योंकि प्रकृति मानव की प्रत्येक भूल का भंयकर बदला भी लेती है।

प्राचीन वैदिक साहित्य इस तथ्य की पुष्टि करते हैं कि मनुष्य को प्रकृति का पुत्र कहा जाता था। अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त में स्पष्ट रूप से उल्लेखित है - '**माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः**' इससे परिलक्षित होता है कि भारतीय संस्कृति सदा से ही साहचर्य - सामीप्य में परिवर्धित एवं पोषित हुई थी। प्रकृति और संस्कृति के मध्य सहज, स्वाभाविक तादात्म्य संबंध था और प्रकृति द्वारा प्रदत्त उपादानों के प्रति कृतज्ञता हमारी संस्कृति का मुख्य आदर्श था, इसलिए प्रकृति के प्रत्येक अंश को पूजनीय भी समझा जाता था। आज भी हम प्रातःकाल उठकर पृथ्वी पर पाँव रखने से पूर्व उसे प्रणाम कर क्षमायाचना करते हैं। यह भारतीय संस्कृति से प्राप्त संस्कार ही है जिसमें सूर्य नमस्कार हमारी योग-साधना की एक प्रक्रिया के रूप में आज भी स्थापित है। भारतीय संस्कृति में

मनुष्य को सुरक्षा भी चतुर्दिक पर्यावरण से ही प्राप्त हुई, इसलिए उसने प्रकृति के आधारों में देवत्त्व गुण आरोपित करते हुए उन्हें जनमानस की श्रद्धा का केन्द्र बिन्दु बनाया। उसके समस्त उपादानों जैसे जीव-जन्तु, पशु-पक्षियों, पेड़-पौधों, नदी-जलाशयों आदि के संरक्षण और संवर्द्धन पर ध्यान दिया और जनमानस में इसे धार्मिक कार्यों के रूप में स्थापित किया। वर्तमान में भी ग्रामीण परिवेश में 'त्रिवेणी' नामक धर्मकार्य बड़ा माना जाता है जिसमें तीन पेड़ (नीम, पीपल और आँवला) एवं जल स्रोत (कुआँ या नल (हेंडपम्प) करवाने का कार्य किया जाता है।

भारतीय मनीषियों ने समूची प्रकृति ही क्या, सभी प्राकृतिक शक्तियों को भी देवतास्वरूप माना था। ऊर्जा के अपरिमित स्रोत को देवता माना- **'सूर्यदेवो भव'**। वस्तुत सूर्य जीवनदाता है, उसके बिना वनस्पतियों एवं जीवों का अस्तित्त्व सम्भव नहीं है। तभी तो वैदिक ऋषि कामना करता है कि सूर्य से कभी हमारा वियोग न हो- **'नः सूर्यस्य संदेश मा युयोथाः।'** सूर्य को स्थावर जगत की आत्मा कहा - **'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च'**।

उपनिषदों में सूर्य को प्राण की संज्ञा दी गई है - **'आदित्यो ह वै प्राणः'**। सभी प्राणियों में, वनस्पतियों में जीवनदाता के रूप में दैवी शक्ति के प्रतीक रूप की कल्पना भारतीय मनीषियों की सर्वथा समीचीन थी। उपनिषद् में वायु ही प्राण बनकर शरीर में वास करता है। 'वायुर्ह वै प्राणो भूत्वा शरीरमाविशत्'।

वेदों में कहा गया है -

'आ वात वाहि भेषजं विवात वाहि यद्रन्पः॥
त्वं हि विश्वभिषजो देवानां दूत ईयेस॥'

अर्थात् - 'हे वायु! अपनी औषधि ले आओ और यहाँ से सब दोष दूर करो; क्योंकि तुम ही सब औषधियों से युक्त हो।'

नदियों को भी जीवनदायिनी शक्ति के रूप में स्वीकार करते हुए ऋग्वेद की स्तुति में वर्णित है कि - **''हमारी देवी नदियाँ हमारी रक्षा के लिए दयामय बनी रहें व हमें पीने के लिए जल प्रदान करती रहें और हम पर आनन्द और खुशियाँ बरसाती रहें। हमारी बहुमूल्य निधियाँ और मानव की विधाता हे नदियों! हम तुम्हारे जल के, आरोग्यकर जल के आकांक्षी हैं।''**

जल को जीवन का आधार मानते हुए उल्लेखित है -

''हे जल तुम अन्न की प्राप्ति के लिए उपयोगी हो। तुम पर नाना प्रकार की वनस्पतियाँ, अन्न आदि निर्भर हैं। तुम औषधि रूप हो।''

भारतीय संस्कृति में जल को भी देवता माना गया है। सरिताओं को जीवनदायिनी कहा गया है। इसी नाते आदि संस्कृतियाँ नदियों के किनारे उपजीं बसीं और विस्तार पाती गईं। जल स्रोतों को स्वच्छ रखने हेतु कहा गया-

नाप्सु मूत्रं पुरीषं वाष्टीवनं समुत्सृजेत्।
अमेध्यलिप्तमन्यद्वा लोहितं वा विषाणि वा॥

(मनुस्मृति)

अर्थात् - पानी में मल-मूत्र, थूक अथवा अन्य दूषित पदार्थ, रक्त या विष का विसर्जन न करें। वैदिक ऋषि पवित्र जल की उपलब्धता की कामना करता है। यथा-

'शुद्धा न आपस्तन्वे क्षरन्तु.....।'

(अथर्ववेद)

अर्थात् हमारे शरीर के लिए शुद्ध जल प्रवाहित होता रहे।

हमारी संस्कृति में नहाने से पूर्व कंकरी मारकर सो रही गंगा माँ को जगाया जाता है और उनका चरण-स्पर्शकर जलस्रोत में शारीरिक आचमन किया जाता

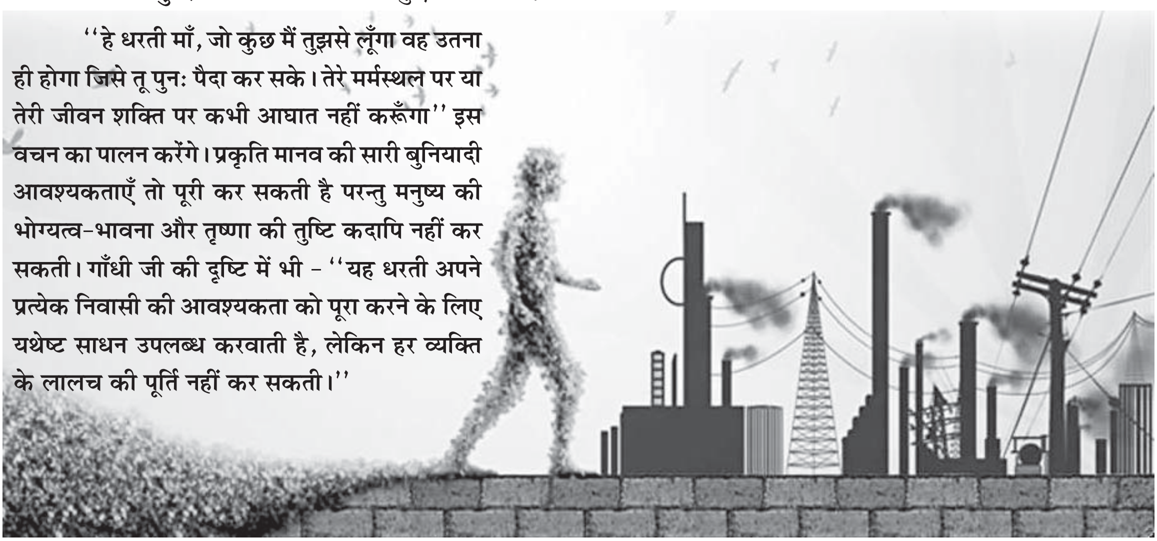

''हे धरती माँ, जो कुछ मैं तुझसे लूँगा वह उतना ही होगा जिसे तू पुनः पैदा कर सके। तेरे मर्मस्थल पर या तेरी जीवन शक्ति पर कभी आघात नहीं करूँगा'' इस वचन का पालन करेंगे। प्रकृति मानव की सारी बुनियादी आवश्यकताएँ तो पूरी कर सकती है परन्तु मनुष्य की भोग्यत्व-भावना और तृष्णा की तुष्टि कदापि नहीं कर सकती। गाँधी जी की दृष्टि में भी - ''यह धरती अपने प्रत्येक निवासी की आवश्यकता को पूरा करने के लिए यथेष्ट साधन उपलब्ध करवाती है, लेकिन हर व्यक्ति के लालच की पूर्ति नहीं कर सकती।''

है। हमारी अवधारणा रही है कि गंगा नदी के दर्शन मात्र से मुक्ति मिल जाती है –

'गंगे! तव दर्शनात् मुक्तिः'।

हमारी इस संवेदनशीलता को भौतिकवादी यान्त्रिकता लील न ले और यह तकनीकी संस्कृति हमारी प्रकृति के आध्यात्मिक एवं पर्यावरणीय मूल्यों को दूषित न कर दे, इसके लिए हमें सजग रहना है। हमारी भारतीय संस्कृति में तो वृक्षों को भी देवता माना गया है और आयुर्विज्ञानियों की यह सोच रही है कि संसार में ऐसी कोई भी वनस्पति नहीं है जो उपयोगी न हो। 'जो वृक्ष फूल-पत्ते और फलों के बोझ को उठाए हुए धूप की तपन और शीत की पीड़ा सहन करता है तथा पर-सुख के लिए अपना शरीर अर्पित कर देता है, उस वन्दनीय तरु को नमस्कार है।' कैसी उदात्त भावना है वृक्षों के प्रति अनुराग की इस भारतीय सोच में। मत्स्य पुराण में तो यहाँ तक कहा गया है –

'दश-कूप-समावापी, दशवापी समोह्लदः।
दश-ह्रद-समः पुत्रो, दश-पुत्रसमो द्रुमः॥'

अर्थात् 'दस कुओं के बराबर एक बावड़ी है, दस बावड़ियों के बराबर एक तालाब है, दस तालाबों के बराबर एक पुत्र (सन्तान) है और दस पुत्रों के बराबर एक वृक्ष है।'

जिस संस्कृति में वृक्षों को पुत्र से उच्च स्थान प्राप्त है, जहाँ वृक्षों की पूजा की जाती है, वहाँ अपनी स्वार्थ पूर्ति हेतु उन्हें काटे जाने की बात भी अकल्पनीय है। यह भारतीय संस्कृति ही है जिसमें वृक्षों को बचाने के लिए सैंकड़ों लोग वृक्षों के बदले अपने शीश देने में भी झिझक महसूस नहीं करते। भारत के विश्नोई समाज के प्रवर्तक श्री जाम्भोजी का सन्देश था – **''पहले अपने पुत्र को भोर सौ, पिछे जायरु रूँख जीव संधारो॥''**

भारतीय संस्कृति में सदैव मानव व पर्यावरण के अन्योन्याश्रित संबंध को महत्त्व दिया जाता रहा है और यह पंच महाभूतों से निर्मित इस सृष्टि के पर्यावरण के प्रति सदैव सचेष्ट एवं सजग दिखाई दी है। हमारी संस्कृति में संस्कारों के वाहक धर्म ने मानव के प्रत्येक मानसिक, वाचिक, कायिक कार्यों को भी संयमित ढँग से करने की प्रेरणा दी है। हमारी संस्कृति में प्रारम्भ से ही वृक्षारोपण वृक्षसिंचन को पर्यावरण संरक्षण के पवित्र कार्य के रूप में स्वीकार किया गया है। भारतीय संस्कृति की यह अनूठी विशेषता रही है कि उसमें पर्यावरण के प्रत्येक मूर्त-अमूर्त तत्त्व को सुरक्षा प्रदान करने के उद्देश्य से उसे देवता का दर्जा देकर या देवता से सम्बन्धित कर उसका संरक्षण और संवर्धन गृहस्थ के लिए आवश्यक बताया। वेदों में प्रकृति को देवत्व रूप प्रदान कर उनके गुणगान का वर्णन किया गया। प्राकृतिक वातावरण में वह क्षमता है जो मानव चित्त को एकाग्र करने में तथा शान्ति प्रदान करने में पूर्णतः समर्थ है। यहाँ की संस्कृति में चाहे भगवान बुद्ध के बोधिसत्त्व की प्राप्ति पीपल के वृक्ष के नीचे ही प्राप्त होने का उदाहरण हो या जातक कथाओं, हितोपदेश, पंचतन्त्र की कहानियाँ हों; प्रकृति से मानव के लगाव को ही दर्शाता है।

भारतीय संस्कृति सर्वात्मवाद के सिद्धान्त की पूर्ण समर्थक रही है। जिसके अनुसार परमतत्त्व की उपस्थिति छोटे-छोटे जीव से लेकर बड़े-से-बड़े तत्त्व में देखी जा सकती है। हमारे मनीषियों ने सभी को प्राणीमात्र में स्नेह करने और प्रकृति के प्रति संवेदनशीलता का संदेश दिया है। प्राचीन ऋषि, मुनि यज्ञादि विधानों के द्वारा पर्यावरण को शुद्ध करने का प्रयास करते थे। प्रकृति का क्षरण अमंगल का सूचक एवं प्रकृति की हरीतिमा को आनन्द का पर्याय समझा जाता था। भारतीय संस्कृति में निर्देशित समस्त संस्कार, आचार, विचार प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से प्रकृति-पर्यावरण-संरक्षण से जुड़ते हैं। यहाँ के लोकगीतों में, लोकधुनों में भी प्रकृति के प्रत्येक तत्त्व की महत्ता का गुणगान किया जाता रहा है, जो आज भी हमारी संस्कृति में देखा जा सकता है। भारतीय संस्कृति और पर्यावरण के घनिष्ठ साहचर्य को हम और अधिक जानें, समझें और पर्यावरण के प्रति हमारे ऋषि मुनियों की संवेदनशीलता को महसूस करें, उससे भावनात्मक रूप से जुड़ने का प्रयास करें, तभी हमारी 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' की कामना पूर्ण हो सकती है। मशीनीकरण और प्रौद्योगिकी की यह नियति रही है कि वह व्यक्ति की संवेदना को खत्म कर देती है। प्रकृति और पर्यावरण से निरन्तर कटते चले जाने से विश्व नितान्त 'तकनीकी संस्कृति' वाले युग में प्रवेश करता चला जा रहा है और इसके परिणामस्वरूप न केवल मानव और प्रकृति के मध्य अपितु मनुष्यों के बीच में भी एक खाई बनती जा रही है। प्रकृति और मानव के बीच बन गई इस खाई को पाटने के लिए पुनः भारतीय संस्कृति के मूल्यों- जिसमें प्रकृति के प्रत्येक तत्त्व के प्रति संवेदनशीलता और आचरण की मर्यादा समाहित है; उसे पुनर्जीवित करते हुए न केवल अपना अपितु पूरे विश्व का सम्बन्ध पर्यावरण से जोड़ने का प्रयास करें। 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' की सुखद और कल्याणकारी परिकल्पना को सच करने के लिए हमें सुविचारित ढँग से भारतीय संस्कृति में निहित मानव और प्रकृति-पर्यावरण के संबंधों को पुनर्जीवित करना होगा और मानव और प्रकृति की समरसता को बनाये रखना होगा। ❑

(व्याख्याता, हरिभाऊ उपाध्याय महिला शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, हटूण्डी, अजमेर)

हमने जैव विविधता के संरक्षण को स्पष्ट रूप से उल्लेखित किया है। हमने वन्य जीवों व वनस्पतियों को सांस्कृतिक, सामाजिक, धार्मिक व औषधीय धरोहर के रूप में प्रमुख स्थान दिया है। वन्य जीवों व वनस्पतियों को देवी देवताओं से जोड़कर पूजनीय मानकर जैव विविधता को संरक्षण प्रदान किया है अतः हम हमारी पर्यावरण के प्रति सार्थक सोच को अपना कर प्रत्येक मनुष्य को स्वयं का पर्यावरणीय संरक्षण व सम्वर्द्धन हेतु स्वयं का संविधान बनाना चाहिये, संविधान केवल किसी राष्ट्र या किसी संस्थान का नहीं होता वरन् यह अनुशासन, मर्यादित, योजनाबद्ध व समबद्ध कार्ययोजना, समर्पण, कृतज्ञता व कर्तव्य परायणता के भावों से परिपूर्ण, जीवन शैली को वर्णित करता है, इसी सोच के कारण वैश्विक स्तर पर पर्यावरण चेतना के भाव को जन-जन तक प्रेषित करना होगा, यही पर्यावरण संविधान है।

प्रकृति संरक्षण का आधार : पर्यावरणीय संविधान

❑ **प्रो. मधुर मोहन रंगा**

भारतीय ऋषि-मुनियों ने प्राचीन काल से ही मानव व प्रकृति के अटूट सम्बंधों की व्याख्या की है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पर्यावरणीय चेतना पर बल दिया है। मनुष्य का प्रकृति के साथ गहरा संबंध है तभी तो हमारे आचार्यों ने कहा कि ''यत् पिण्डे तत् ब्रह्ममाण्डे'' अर्थात् इस पिण्ड या शरीर में जो है वही ब्रह्माण्डे (प्रकृति) में हैं, शरीर और प्रकृति में तारतम्य के पीछे यदि कोई कारण है तो वे हैं, पंच-महाभूत अर्थात् पृथ्वी, जल, तेज, वायु व आकाश। इन पाँच स्थिर भूतों से ही दृश्य जगत उत्पन्न हुआ है और ये ही अव्यक्त प्रकृति में विद्यमान है। मनुष्य का क्रमिक-विकास प्राकृतिक पर्यावरण से निरंतर क्रिया व प्रतिक्रिया के कारण हुआ है। प्रकृति और मानव की अपनी-अपनी विभिन्न अवस्थायें मिल-जुल जाने के उपरान्त भी प्रकृति में परिवर्तन के अपने नियम है, फिर भी मानव और प्रकृति एक दूसरे पर निर्भर है। मानव समाज को अपने अस्तित्व हेतु प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग करना आवश्यक है, परन्तु चिंतनशील कहे जाने वाले मानव ने संसाधनों का मर्यादित उपयोग न करके अमर्यादित उपभोग किया, जिससे पारिस्थितिकी संतुलन बिगड़ गया, इसी कारण भौतिकवाद व प्रकृतिवाद के बीच का सन्तुलन व साम्य बिगड़ गया। इसका प्रभाव स्थानीय, क्षेत्रीय व वैश्विक स्तर पर होने लगा।

विश्व में तापमान बढ़ने से गेहूँ उत्पादन में मंदी के साथ भावों का रुख अधिक तेजी की ओर बढ़ रहा है ऑस्ट्रेलिया व रशिया में गेहूँ के भाव बढ़े हैं ऑस्ट्रेलियाई ब्यूरो ऑफ मेट्रोलॉजी के आँकड़ों के अनुसार सबसे बड़े गेहूँ उत्पादक क्षेत्र पूर्वी एवं पश्चिमी क्षेत्र में सामान्य से कम वर्षा हुई व उत्पादन 20 प्रतिशत हो गया। ग्लोबल वार्मिंग से बड़ी झीलों व नदियों का अस्तित्व खतरे में है। बोविलिया में नमक के पानी की झील,जलवायु परिवर्तन के कारण लगभग सूख चुकी है माली (Mali) की फेगुईबाइन (Fagubine) झील अब छोटे तालाब में परिवर्तित हो गई है, यही स्थिति पोयांग (Poyang) झील की है। वैश्विक तापमान चार डिग्री बढ़ा तो लंदन व मुंबई के आधे से अधिक शहर डूब जायेंगे। इसी प्रकार जलवायु परिवर्तन का प्रभाव भारत में भी दृष्टिगोचर हो रहा है। राजनंदगांव (छ.ग.) जिले के बड़े जलाशयों में भी पर्याप्त पानी का भराव नहीं है। शिवनाथ जलाशय का पानी पूरी तरह से सूख गया है। पर्यावरण में वैश्विक स्तर पर होने वाले जलवायु परिवर्तन पर सार्थक चर्चा के लिए पेरिस सम्मेलन का आयोजन किया गया, जिससे कार्बन उत्सर्जन को कम करने का आह्वान किया गया। क्योंकि अलनीनो के प्रभाव

के कारण तापमान बढ़ता है। कुल मिलाकर वैश्विक स्तर पर होने वाले जलवायु परिवर्तन का प्रमुख कारण लगातार कम होते वन, वन-क्षेत्र, वृक्ष, वन आवरण (Forest Cover) व वनस्पतियाँ है।

प्राचीन भारत के वैदिक वाङ्गमय में सूक्त, ऋचायें एवं कथानक मिलते हैं, जिसमें प्रकृति का सुंदर वर्णन करते हुए उनके संरक्षण एवं सम्वर्द्धन की बात कही है। प्राकृतिक संसाधनों में पंच महाभूतों का तो महत्त्व है ही परन्तु सबसे अधिक पर्यावरणीय घटकों में पेड़-पौधों का महत्त्व है। यद्यपि सभी घटक एक दूसरे के पूरक हैं परन्तु पेड़-पौधों व वनस्पतियों को प्रकृति सन्तुलन के केन्द्र में रखा जाता है, इसी कारण प्राचीनकाल से ही भारत में वृक्ष पूजा के महत्त्व को प्रतिपादित किया है। प्राचीन शास्त्रों में कल्पवृक्ष व चैत्यवृक्ष (Ficus religiosa) का वर्णन है। आर्य प्रकृति के पूजक होने के कारण सम्पूर्ण वनस्पतियों का आदर व सम्मान करते थे। अशोक का पेड़, सबसे पवित्र वृक्ष माना गया है, मध्य पूर्वी हिमालय व पश्चिमी तट पर पाया जाता है, उस वृक्ष को कामदेव को समर्पित कर इसे स्नेह का देवता मानते हैं। ऐसी भी मान्यता है कि भगवान बुद्ध का जन्म इसी वृक्ष के नीचे हुआ था। बरगद के वृक्ष को त्रिमूर्ति, भगवान विष्णु-शिव व ब्रह्मा का प्रतीक मानते हैं, इसे जीवन के सातत्य से जोड़ा गया है। एक मान्यता के अनुसार निसंतान दम्पति को इसकी पूजा करने से लाभ होता है। इस विशाल वृक्ष को भारतीय वनस्पति उद्यान में सबसे बड़ा वृक्ष कहते हैं व परम गुरु (Ultimate Teacher) कहा गया है। बिल्व पत्र भगवान शिव से जुड़ा है, इसके बारे में मान्यता है कि इसे भगवान को अर्पण करने पर वे खुश होते हैं, इस वृक्ष के फल, पत्तियाँ व पुष्प को पवित्र माना गया है, इसे मंदिर या घर के आसपास लगाना श्रेष्ठ माना है। 23वें तीर्थंकर भगवान पारसनाथ जी ने इसी के नीचे निर्वाण प्राप्त किया था। इसके अतिरिक्त यह औषधीय महत्त्व का पादप है।

भगवान कृष्ण का सामान्य नाम वेणु गोपाल, बंशीधर, मुरलीधर है, क्योंकि उनका प्रिय वाद्य यंत्र बांसुरी है, जो बाँस से निर्मित है। केले को वृक्ष के समकक्ष नहीं माना गया है परन्तु संरचना व आकार के कारण वृक्ष कहा गया इसके तनों को घर के प्रवेश द्वार पर सजाकर, आगन्तुकों का स्वागत किया जाता है, पत्तियाँ मण्डप बनाने व प्रसाद देने हेतु उपयोगी है भगवान गणेश इसके अर्पण से प्रसन्न होते हैं। इसका फल विष्णु व लक्ष्मी को भी समर्पित किया जाता है इस पौधे का रोपण वैशाख, माघ या कार्तिक शुक्ल चतुर्दशी को किया जाता है।

इसी प्रकार भांग के पौधे को भी पवित्र मानते हैं, पौधे की पत्तियों को अभिभावक के रूप में मान्यता है। स्वप्न में यह पौधा दिखने पर परिवार की समृद्धि का प्रतीक है। महाशिवरात्रि पर इसका महत्त्व है। दक्षिण भारतीय परिवार में नारियल के वृक्ष को निश्चित स्थान प्रदान किया जाता है। प्रत्येक धार्मिक अनुष्ठानों में इसका महत्त्व है, कार्यक्रमों की स्थापना में इसका महत्त्व है इसे लक्ष्मी का प्रतीक पूर्वकुम्भ भी कहते हैं सुंदरता, पवित्रता व दिव्यता का प्रतिबिम्ब कमल का भारतीय वैदिक वाङ्गमय में विशेष महत्त्व है हिन्दू पौराणिक के अनुसार यह समुद्र मंथन से उत्पन्न हुआ था। यह आध्यात्मिक जागरण का वाहक है। इसका पुष्प, लक्ष्मी का प्रतीक है। आम वृक्ष का उल्लेख रामायण, महाभारत व पुराणों में वर्णित है। पूर्णकुम्भ का प्रतीक, पानी के बर्तन में आम की पत्तियों व नारियल को पूजा की स्थापना में उपयोगी मानते हैं। नीम वृक्ष औषधीय गुणों के कारण महत्त्वपूर्ण हैं। इसी प्रकार पीपल, तुलसी, चन्दन आदि का भी हमारे जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान है। उपर्युक्त लघु वर्णन भारतीय प्राचीन चिंतन, जो पर्यावरण संरक्षण व सम्वर्द्धन से जुड़ा, उसे इंगित करता है। वैश्विक स्तर पर होने वाले पर्यावरणीय परिवर्तनों के कारण, ग्लोबल वार्मिंग, कार्बन उत्सर्जन, अमर्यादित शहरीकरण व औद्योगिकीकरण ने सरकारों को समुचित कदम उठाने के लिए प्रेरित किया है क्योंकि भौतिकतावादी दृष्टिकोण के कारण पर्यावरण क्षतिग्रस्त हो रहा है।

भारत सरकार ने पर्यावरण संरक्षण हेतु राष्ट्रीय वन नीति (1952) राष्ट्रीय जल नीति (2002) जैव विविधता अधिनियम (2002), पर्यावरण संरक्षण नीति (2006) राष्ट्रीय क्रिया योजना, ई-अपशिष्ट प्रबंध नियम (2016), इनके अतिरिक्त नेशनल ग्रीन ट्रिब्यूनल (2010) गंगा एक्शन प्लान (1985), भारतीय प्राणी सर्वेक्षण, भारतीय वनस्पति संरक्षण व अनेक राष्ट्रीय संस्थायें

हैं जो पर्यावरण संरक्षण व सम्वर्द्धन हेतु प्रयासरत है परन्तु यक्ष प्रश्न यह उठना स्वाभाविक है कि जिस देश में प्राचीन चिंतकों ने सदैव प्रकृति की आराधना, अर्चना व पूजा कर पारिस्थितिकी सतुंलन को कायम रखा है, उसकी पर्यावरणीय चेतना कहाँ लुप्त हो गई? वेद साक्षी है कि हमने सदैव संसाधनों की पूजा की है। वेदों में कहा गया है –

यो दवोद्रग्नो, योदुष्पु
यो विश्व भवनमाविवेश।
यो औषधिक्ष यो वनस्पतिषु
तस्मै देवाय नमोनमः।।

अर्थात् जो अग्नि, जल, आकाश, पृथ्वी एवं वायु से आच्छादित है, जो औषधियों एव वनस्पति में भी विद्यमान है, उस देश को हम नमन करते हैं।

श्रीमद्भगवद् गीता (अध्याय 10, श्लोक 26) में वर्णित

अश्रवत्थः सर्ववृक्षाणां
देवर्षीणां च नारदः ।
गन्धर्वाणां चित्ररथः
सिद्धानां कपिलो मुनिः ।।

अर्थात् भगवान श्री कृष्ण का यह संदेश कि मैं सब वृक्षों में पीपल का वृक्ष, देवर्षियों में नारद मुनि, गन्धर्वों में चित्ररथ और सिद्धों में कपिल मुनि हूँ।

हमारे चिंतन ने भावनात्मक रूप से पेड़-पौधों-वनस्पतियों को सर्वोच्च स्थान प्रदान कर स्वतः ही उनका संरक्षण कर दिया है, यही भाव मानव समझे तो?

हमने जैव विविधता के संरक्षण को स्पष्ट रूप से उल्लेखित किया है। हमने वन्य जीवों व वनस्पतियों को सांस्कृतिक, सामाजिक, धार्मिक व औषधीय धरोहर के रूप में प्रमुख स्थान दिया है। वन्य जीवों व वनस्पतियों को देवी देवताओं से जोड़कर पूजनीय मानकर जैव विविधता को संरक्षण प्रदान किया है अतः हम हमारी पर्यावरण के प्रति सार्थक सोच को अपना कर प्रत्येक मनुष्य को स्वयं का पर्यावरणीय संरक्षण व सम्वर्द्धन हेतु स्वयं का संविधान बनाना चाहिये, संविधान केवल किसी राष्ट्र या किसी संस्थान का नहीं होता वरन् यह अनुशासन ,मर्यादित, योजनाबद्ध व समबद्ध कार्ययोजना, समर्पण, कृतज्ञता व कर्तव्य परायणता के भावों से परिपूर्ण, जीवन शैली को वर्णित करता है, इसी सोच के कारण वैश्विक स्तर पर पर्यावरण चेतना के भाव जन-जन तक प्रेषित करना होगा, यही पर्यावरण संविधान है। पर्यावरण सुरक्षा को अपनी आचार-संहिता बनायें, क्योंकि मनुष्य आजकल बाहरी नियमों से संचालित हो रहा है व हमारी सांस्कृतिक विरासत से दूर जा रही है होता है।

भौतिकवादी दृष्टिकोण अपना कर पर्यावरण का उपभोग व अत्यधिक दोहन करना अपना अधिकार मान लेता है। जबकि हमारी सांस्कृतिक विरासत मर्यादापूर्ण प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग को प्राथमिकता देकर दीर्घकालिक विकास के सिद्धांत को प्रतिपादित करती है। यही पर्यावरण संरक्षण की समग्र सोच ही हमें हमारी जीवन शैली में भारतीय चिंतन के साथ समावेश करनी होगी। तभी हमारी पर्यावरणीय चेतना की भारतीय सोच साकार होकर, सम्पूर्ण विश्व को पर्यावरणीय संविधान का पाठ पढ़ायेगी इसी से वैश्विक कल्याण होगा। ❑

(विभागाध्यक्ष पर्यावरण विज्ञान विभाग, सरगुजा विश्वविद्यालय अम्बिकापुर, छ.ग.)

वैश्विक पर्यावरण संरक्षण में भारत की भूमिका

भारत, संयुक्त राष्ट्र संघ का प्राथमिक सदस्य है व पृथ्वी सम्मेलनों में विकासशील राष्ट्रों का पक्ष रखने का प्रयास करता रहा है, सतत् विकास इन राष्ट्रों की आवश्यकता है परन्तु वित्तीय व आर्थिक साधनों का अभाव होने के कारण स्वच्छ व पर्यावरण मैत्रीपूर्ण तकनीकी अपनाने में विवशता है अतः भारत लम्बे समय से विभिन्न सम्मेलनों में विकसित राष्ट्रों द्वारा विकासशील राष्ट्रों को पर्यावरण मैत्रीपूर्ण विकसित तकनीक उपलब्ध करवाने की पेशकश व प्रयास करता रहा है। भारत की संस्कृति, आर्य संस्कृति है। आर्य से तात्पर्य विद्वान होने से है जो सादगीपूर्ण जीवन, सीमित आवश्यकताओं तथा संयमित उपभोग पर बल देती है।

❑ डॉ. इन्दुबाला अग्रवाल

रूस में जन्मे अमेरिकी अर्थशास्त्री साइमन कुजनेट्स ने प्रतिव्यक्ति आय व प्रदूषण के संकेन्द्रण को मापने का प्रयास किया। उनका मानना था कि शुरुआत में जब कोई राष्ट्र विकास की ओर अग्रसर होता है तब द्वितीयक क्षेत्र के उपयोग में वृद्धि से सकल घरेलू उत्पाद बढ़ता है तथा औद्योगीकरण व शहरीकरण के परिणामस्वरूप प्रदूषण बढ़ता है और विकास-पर्यावरण मैत्रीपूर्ण नहीं रहता। लेकिन राष्ट्र के विकसित होने के साथ घरेलू उत्पाद में सेवा क्षेत्र का अंश बढ़ता है व प्रदूषण की मात्रा घटती है तथा विकास-पर्यावरण मैत्रीपूर्ण हो जाता है। अल्प विकसित राष्ट्रों के लिए उन्होंने पर्यावरण मैत्रीपूर्ण विकास तकनीकी द्वारा सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धि हेतु मार्ग सुझाया है।

आर्थिक विकास की दृष्टि से विश्व के राष्ट्रों को विकसित, विकासशील व अविकसित राष्ट्रों के श्रेणी में विभाजित किया जा सकता है जिसमें मात्र सकल राष्ट्रीय आय में वृद्धि को न लेकर बल्कि ढाँचागत विकास व हर क्षेत्र में तकनीकी के उपयोग से जीवन-स्तर में वृद्धि को शामिल किया जाता है। आर्थिक प्रगति के फलस्वरूप अनेक पर्यावरणीय प्रश्न उत्पन हुए हैं, इनमें जीवाश्म ईंधन के अत्यधिक उपयोग, वनों की कटाई, कटाव, पौधों व पशुओं की प्रजातियों की समाप्ति व जैव विविधता की क्षति के कारण उत्पन्न जलवायु के परिवर्तन तथा वायु व जल प्रदूषण, विकरण तथा उर्वरकों व कीटनाशकों के अत्यधिक उपयोग से पर्यावरणीय क्षति को शामिल करते हैं। इस प्रकार विश्व में होने वाली आर्थिक प्रगति की वर्तमान दरें विश्व को महा विपत्ति व महासंकट की ओर ले जा रही हैं। औद्योगीकरण के फलस्वरूप ग्रीन हाउस गैसों का अत्यधिक उत्सर्जन, तापमान में बढ़ोतरी, वायुमण्डल में परिवर्तन तथा पृथ्वी की सुरक्षा छतरी ओजोन परत का क्षय होना गंभीर विषय हैं। अंतरराष्ट्रीय जगत इन विभिन्न मुद्दों को लेकर काफी चिंतित है व इन मुद्दों को लेकर हर वर्ष अलग-अलग राष्ट्रों में पृथ्वी सम्मेलन आयोजित किये जाते हैं व विभिन्न राष्ट्रों के प्रतिनिधि इन विषयों पर चर्चा करते हैं कि किस प्रकार हानिकारक ग्रीन हाउस गैसेज (GHG) गैसों के उत्सर्जन को कम किया जाए।

इस सन्दर्भ में क्योटो प्रोटोकॉल 1995 महत्त्वपूर्ण है। यह एक अंतरराष्ट्रीय

संधि है जिसका उद्देश्य वायुमंडल में ग्रीन हाउस गैसों का घनत्व उचित मात्रा में रखना है। इसमें औद्योगिक राष्ट्रों को ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन का प्रमुख जिम्मेदार ठहराया गया व उन्हें सामूहिक रूप से सन् 2005 तक ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन को 5.2 प्रतिशत कम करने को कहा गया। इनमें दो तथ्य महत्त्वपूर्ण हैं, एक है कार्बन क्रेडिट व दूसरा स्वच्छ विकास तंत्र।

कार्बन क्रेडिट में यदि कोई राष्ट्र ग्रीनहाउस गैसों को उत्सर्जन के मापदंड से अधिक गैस उत्सर्जित करता है तो वह राष्ट्र पैसे देकर उस राष्ट्र से जिसका ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन मापदंड से कम है कार्बन क्रेडिट खरीद सकता है। तथा स्वच्छ विकास तंत्र के अंतर्गत यदि कोई राष्ट्र अधिक ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन करता है परन्तु वह दूसरे राष्ट्र या स्वयं के राष्ट्र में कोई ऐसी परियोजना लगाता या विकसित करता है जिससे हानिकारक गैसों का उत्सर्जन कम किया जा सकता है तो उस राष्ट्र को गैसों के अधिक उत्सर्जन पर छूट दी जा सकेगी। हालाँकि क्योटो प्रोटोकॉल पर 188 सदस्य राष्ट्र सहमत थे व उन्होंने प्रभावी कदम भी उठाये। लेकिन विकसित राष्ट्र जो अपना विकास कर चुके हैं व उनके सकल राष्ट्रीय उत्पाद में सेवा क्षेत्र का अंश अधिक है जिम्मेदारी लेने व जवाबदेही से बचना चाहते हैं और विकासशील राष्ट्र जिनमें विकास प्रक्रिया जारी है व औद्योगिक क्षेत्र का सकल उत्पाद में काफी अधिक अंश है उनको ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन के लिए प्रमुख जिम्मेदार ठहराते हुए इन गैसों को वातावरण में कम छोड़ने का दवाब उत्पन करते हैं। इस प्रकार विभिन्न पृथ्वी सम्मेलन विकसित व विकासशील राष्ट्रों द्वारा एक दूसरे पर आरोपों व प्रत्यारोपों के कारण बगैर किसी परिणाम पर पहुँचे समाप्त हो जाते हैं।

भारत, संयुक्त राष्ट्र संघ का प्राथमिक सदस्य है व पृथ्वी सम्मेलनों में विकासशील राष्ट्रों का पक्ष रखने का प्रयास करता रहा है, सतत् विकास इन राष्ट्रों की आवश्यकता है परन्तु वित्तीय व आर्थिक साधनों का अभाव होने के कारण स्वच्छ व पर्यावरण मैत्रीपूर्ण तकनीकी अपनाने में विवशता है अत: भारत लम्बे समय से विभिन्न सम्मेलनों में विकसित राष्ट्रों द्वारा विकासशील राष्ट्रों को पर्यावरण मैत्रीपूर्ण विकसित तकनीक उपलब्ध करवाने की पेशकश व प्रयास करता रहा है। भारत की संस्कृति, आर्य संस्कृति है। आर्य से तात्पर्य विद्वान होने से है जो सादगीपूर्ण जीवन, सीमित आवश्यकताओं तथा संयमित उपभोग पर बल देती है। विभिन्न पृथ्वी सम्मेलनों में उठाए गए मुद्दों से सहमत होते हुए यहाँ भी हरित गैसों को कम उत्सर्जित करने का प्रयास किया जा रहा है। जैसे वाहनों से निकलने वाले प्रदूषण के रोकथाम हेतु बनाये गए मापदंड यूरो 1, 2 व 3 को अपनाकर वाहनों हेतु प्रदूषण मुक्त प्रमाण-पत्र की अनिवार्यता, 16 उद्योगों की विशिष्ट पहचान जो ज्यादा कार्बन का उत्सर्जन करते हैं तथा 1 टन से अधिक कार्बन उत्सर्जन की इन कारखानों को मना ही है। इसके अलावा प्रदूषण कर भी भारत में आरोपित किया गया है परन्तु यह प्रयास नगण्य है। पृथ्वी का विनाश रोकने हेतु विश्व के समस्त देशों द्वारा एकजुट होकर दृढ़ इच्छा शक्ति से प्रयास करना होगा, बजाय इसके कि वो सिर्फ अपने-अपने हित देखें। यह सुभाषित इस मामले में प्रासंगिक है-

अयं निज: परो वेति
गणना लघुचेतसाम्
उदारचरितानां तु
वसुधैव कुटुम्बकम्।

अर्थात् यह मेरा है, यह तेरा है ऐसी गणना अल्पबुद्धि के लोग करते हैं, उदार चरित्र के लोगों के लिए तो समस्त विश्व, परिवार के समान है। अत: औद्योगीकरण से उत्पन्न संकट को समस्त राष्ट्रों द्वारा अपना उतरदायित्व मानकर उसको दूर करने के उपाय करने चाहिए। सबके सुख व सबके दु:ख साझा होने चाहिए यही हमारी आर्य संस्कृति का सही मायनों में प्रसार है। ❑

(पूर्व तदर्थ व्याख्याता, क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान, अजमेर)

प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण

❑ **बजरंग प्रसाद मजेजी**

जल, वायु और आकाश ने जीवों को आधार प्रदान किया है, जिसके सहारे हमने प्रगति के कई सोपान प्राप्त किए हैं। उन्हें ही आज मानव द्वारा प्रभावित और विघटित किये जा रहे हैं। प्रकृति की इन महान अमानतों के प्रति हम पूजा और संरक्षण की हमारी प्राचीन भारतीय परम्पराओं को भुलाना शोषण का अंतहीन सिलसिला आज हम ऐसे मोड़ पर ले जा रहा है कि मानव जीवन के अस्तित्व को खतरा बढ़ गया है। आवश्यकता है हम भूमि पर वृक्षारोपण करें। नदी के किनारे कटाव को रोकने के लिए छायादार वृक्ष लगायें। चहुँओर नीम, पीपल, बरगद, जामुन, आँवला के वृक्ष राजमार्ग, शिक्षण संस्थान, चारागाह, श्मशान भूमि में लगा कर, संरक्षण प्रदान करें।

पर्यावरण की समस्या विकासशील राष्ट्रों की ही नहीं अपितु पूरे विश्व की समस्या बन गई है। नभचर, जलचर, थलचर सभी जीवधारी पर्यावरण के प्रदूषण से प्रभावित हुए हैं। इसीलिए कहा जाता है कि जलवायु परिवर्तन प्रकृति से छेड़छाड़ का परिणाम है। पाश्चात्य चिंतन के भोगवाद ने व्यक्ति की लालसाओं को इतना बढ़ा दिया है कि वह धरती पर उपलब्ध सभी वस्तुओं को उपभोग की वस्तु मानकर बेहिसाब दोहन करने लगा है। प्रकृति आज भोगवादी, स्वार्थमयी संस्कृति के आवरण में अपना स्वरूप खोती जा रही है। मानव ने अपने स्वार्थ में जल, वायु, मृदा को प्रदूषित कर दिया है। विश्व बैंक की एक रिपोर्ट के अनुसार एशिया और प्रशांत क्षेत्रों में प्राकृतिक संसाधनों का सबसे ज्यादा दोहन किया गया है। रिपोर्ट के आधार पर इस शताब्दी में पूरे विश्व में पानी की कमी होगी। सन् 2040 तक देश में पीने का पानी समाप्त हो सकता है। देश के 91 बड़े जलाशयों में सिर्फ 22 प्रतिशत पानी बचा है। असम के शहरी आबादी में मात्र 10 प्रतिशत तमिलनाडु में 50 प्रतिशत आबादी को ही पेयजल उपलब्ध है। केरल, आंधप्रदेश, गोवा, बिहार, राजस्थान, पं. बंगाल, मेघालय, मिजोरम, त्रिपुरा, सिक्किम में भी पेयजल की समस्या है। सेंटर फॉर साईंस एण्ड एन्वायरमेंट की ताजा रिपोर्ट के अनुसार भारत की दुनिया में सबसे अधिक प्रदूषित देशों में गिनती है। देश की राजधानी दिल्ली प्रदूषित राज्यों की सूची में सबसे ऊपर है। ग्लोबल इन्वायरमेंट इंडेक्स में सम्मिलित 180 देशों में भारत 177 वें स्थान पर हैं। जबकि 2 वर्ष पूर्व 141 स्थान पर था। अन्तरराष्ट्रीय संगठन ग्रीन पीस इंडिया की रिपोर्ट में भी दिल्ली प्रदूषित शहरों में सर्वोच्च स्थान पर है। वायु प्रदूषण में सबसे अधिक ज्यादा प्रदूषित गंगा के मैदानी इलाकों के शहर हैं। रिपोर्ट के अनुसार देश के शहरों में 55 करोड़ लोग राष्ट्रीय वायु गुणवत्ता सूचकांक मानक से कई गुणा ज्यादा वायु प्रदूषण में श्वास लेने को विवश हैं। इसमें 5 वर्ष से कम आयु के 4 करोड़ 70 लाख बच्चे भी सम्मिलित हैं। वायु प्रदूषण के स्तर में वृद्धि के कारण मृत्युदर में भी वृद्धि होती है। पर्यावरण प्रदूषण प्रकृति के संतुलन को बिगाड़ देता है।

जलवायु परिवर्तन के लिए प्राकृतिक कारणों के साथ मानवीय गतिविधियाँ भी जिम्मेदार है। इसके कारण कार्बन डाई ऑक्साईड, मिथेन,नाइट्रोजन जैसी गैसों का उत्सर्जन हो रहा है तथा ऑक्सीजन का स्तर (लेवल) कम हो रहा है। इससे प्राकृतिक संसाधनों (इको सिस्टम) का संतुलन बिगड़ रहा है। जनसंख्या बढ़ने के कारण

भी कई समस्याएं पैदा हुई हैं। कृषि में रासायनिक उर्वरकों का अधिकाधिक उपयोग भी मृदा प्रदुषण का एक कारण है। हावर्ट टी एच चान स्कूल ऑफ पब्लिक हेल्थ की डाक्टर फ्रांसेस्को डोमिनिकी ने शोध में बताया कि फैक्ट्रियों और वाहनों से निकलने वाले धुएं से कार्बन के सूक्ष्मकण पहुँचते हैं। इससे अस्थमा, स्ट्राक, दिल का दौरा, कैंसर जैसी बीमारियों को पैदा करता है। अधिक समय तक प्रदूषित वायु में रहने के कारण मानव की मृत्यु तक हो सकती है।

जलवायु परिवर्तन का प्रभाव

मानव के प्रकृति के दखल के कारण पृथ्वी के भौगोलिक बदलाव से बढ़ रहे खनन व्यवसाय, बाँध, बड़ी-बड़ी इमारतों के निर्माण, औद्योगिक फैक्ट्री के कारण होने वाले प्रदूषण से मौसम का मिजाज बदल रहा है। मौसम का 2-3 डिग्री तापमान बढ़ा है। धरती और बादलों के बीच गर्मी होने से बादलों को बरसने नहीं देती है और कभी-कभी दोनों तरफ से आने वाले बादल आपस में टकराते हैं तो अचानक अत्यधिक वर्षा हो जाती है। अनियमित और अनिश्चित वर्षा से फसल को हानि होती है और बाढ़ का कारण भी बन जाता है। वर्षा न होने पर समय पर फसलों को पानी नहीं मिलने से पैदावार पर प्रभाव बड़ता है तथा खाद्यान्न की कमी के कारण मानव की आय की 75 प्रतिशत तक राशि आहार सामग्री खरीदने पर व्यय हो जाती है। खेतों में पानी की कमी के कारण आवश्यक पानी की 7 प्रतिशत कमी और पीने के स्वच्छ जल की 18 प्रतिशत कमी हो जाती है। कृषि उत्पादन में 20 प्रतिशत कमी तथा तापमान में 30 प्रतिशत तक बढ़ोतरी हो जाती है। अचानक गर्मी बढ़ जाती है। जलवायु परिवर्तन से बाढ़, तूफान, भूकम्प, भूस्खलन जैसी प्राकृतिक आपदा आ जाती है। पृथ्वी पर प्राप्त दूषित जल से प्रतिवर्ष 20 लाख बच्चों की मौत व भूख और कुपोषण से हो रही है। पृथ्वी पर उपलब्ध 2/3 भाग समुद्र का जल 97 प्रतिशत खारा है और मात्र 3 प्रतिशत जल ही पीने योग्य उपलब्ध है। प्रदूषण के कारण अम्लीय वर्षा होती है, जिसमें सल्फर और कार्बन का मिश्रण होता है। इस कारण मानव के फोड़े, फुंसी, त्वचा रोग होते हैं। देश की 70 प्रतिशत नदियाँ प्रदूषित हैं। प्रतिष्ठान, कारखाने सड़क निर्माण के समय सैकड़ों वृक्षों की आहूति दे दी जाती है तथा ईंधन और फर्नीचर की आवश्यकता के लिए वृक्षों की बहुतायत में कटाई के कारण देश की भूमि प्रति वर्ष बीहड़ बनती जा रही है। पानी समाप्त होता जा रहा है। इस अनुपात में वृक्षारोपण कम हो रहा है। जंगलों की कमी के कारण इन दिनों वन्यजीव शहरी सीमा में प्रवेश कर मानव के क्षति पहुँचा रहे हैं। हमारी संस्कृति वन प्रधान रही हैं। वन में ऋषि, आचार्यों की तपोस्थली रही है, जहाँ रहकर उन्होंने वेद, उपनिषद् की रचना की थी। जल को देवता मानकर, नदियों को देवी मानकर स्नान और पूजन करते आये हैं। पशु-पक्षियों को देवताओं का वाहन मानकर उन्हें हानि नहीं पहुँचाते थे। वृक्षविहीन जंगल होने से जीवों को खतरा हो गया है और कई प्रजातियाँ समाप्ति की ओर है। मानव ने अन्न उत्पादन को बढ़ाने की ललक में मृदा में रासायनिक उर्वरकों,कीटनाशक दवाइयों (पेस्टीसाइड) से मृदा को प्रदूषित कर, बंजर बना रहे हैं। वैज्ञानिकों का कहना है कि 2100 तक धरती पर प्रदूषण से बढ रहे तापमान को नहीं रोका गया तो इसका प्रभाव जलवायु, कृषि पर अधिक पड़ेगा, जिससे मानव को कष्ट उठाना पड़ सकता है।

प्राकृतिक संसाधन के सरंक्षण के लिए मानव का दायित्व प्रकृति से प्रेम करें।

जल, वायु और आकाश ने जीवों को आधार प्रदान किया है, जिसके सहारे हमने प्रगति के कई सोपान प्राप्त किए हैं। उन्हें ही आज मानव द्वारा प्रभावित और विघटित किये जा रहे हैं। प्रकृति की इन महान अमानतों के प्रति हम पूजा और संरक्षण की हमारी प्राचीन भारतीय परम्पराओं को भुलाना शोषण का अंतहीन सिलसिला आज हमें ऐसे मोड़ पर ले जा रहा है कि मानव जीवन के अस्तित्व को खतरा बढ़ गया है। आवश्यकता है हम भूमि पर वृक्षारोपण करें। नदी के किनारे कटाव को रोकने के लिए छायादार वृक्ष लगायें। चहुँओर नीम, पीपल, बरगद, जामुन, आँवला के वृक्ष राजमार्ग, शिक्षण संस्थान, चारागाह, श्मशान भूमि में लगा कर, संरक्षण प्रदान करें। जन्मदिन पर वृक्ष लगायें। सीवरेज से जाने वाले प्रदूषित जल को नदियों में जाने से रोकने की योजना को सफल बनायें। यजुर्वेद में कहा है -

पृथिवी मातर्या या हिंसीर्यो अहं त्वाम्।

(यजुर्वेद 10/ 23)

अर्थात् हे माता, तुम हमारा पालन पोषण उत्तम रीति से करती हो हम कभी भी तुम्हारे प्रति हिंसा (दुरुपयोग) नहीं करेंगे । कवि ने कहा है-

हाय रे मानव तू अपनी स्वार्थपरता में, कितना अंधा हो गया है, क्यों तूने खिलते चमन को वीरान कर दिया है।

(स्वतंत्र लेखक)

सनातन है भारतीय संस्कृति

❑ विष्णुप्रसाद चतुर्वेदी

इण्डोनेशिया में आए टोवा भूकम्प का मलबा उड़कर भारत के कई भागों में जमा हो गया था। क्वाटर्ज कणों के अध्ययन से ज्ञात हुआ कि मलबा लगभग 77,000 वर्ष पुराना है। मलबे की पर्त के नीचे तथा ऊपर पाए गए औजारों की समानता बताती है कि टोवा भूकम्प के समय में अफ्रीका से भारत आया मानव इतना विकसित हो चुका था कि टोवा भूकम्प की विपत्ति को झेल सका। साईन्स पत्रिका में छपे माईकल वाल्टर के एक शोध लेख में कहा गया कि 4500 वर्ष पूर्व भारत में चने, मूंग एवं अन्य अनाजों की कृषि होती थी। कृषि योग्य प्रजातियों का विकास भारतीय संस्कृति की प्राचीनता का प्रमाण है।

भारतीय संस्कृति की सनातनता को झुठलाने के लिए लिए अंग्रेजों ने आर्यों के बाहर से आने व सिन्धुघाटी सभ्यता के मूल निवासियों को दक्षिण की ओर खदेड़ने की कहानी प्रचारित की थी। इस कहानी के पीछे स्वार्थ यह था कि अंग्रेज भारत में अपनी उपस्थिति को नैतिक आधार प्रदान करना चाहते थे। भारतीय विद्वानों ने आर्य-द्रविड़ संघर्ष की अवधारणा का विरोध किया था फिर भी अंग्रेज अपने प्रयास में सफल रहे। अब वैज्ञानिकों ने सिद्ध किया है कि मानव ने प्रथम संस्कृति का विकास भारत में ही किया। बाद में यह संस्कृति ऑस्ट्रेलिया होते हुए यूरोप तक पहुँची। भारतीय संस्कृति का प्रारम्भ सिन्धुघाटी सभ्यता से हजारों वर्ष पहले हो गया था।

इतिहास जानने की जैविक विधि

माइटोकोन्ड्रिया के डीएनए की जाँच से जीवित या मृत मानव के वंशीय इतिहास का पता किया जा सकता है। प्रत्येक जीव को माइटोकोन्ड्रिया केवल उसकी माता से ही मिलता है। लाखों वर्ष पूर्व जिस अफ्रीकी माँ ने हम होमो सेपियन्स को जन्म दिया था उसी के माइटोकोन्ड्रिया के डीएनए की प्रतियाँ, कुछ बदलाव के साथ, आज भी हमारे माइटोकोन्ड्रिया में उपस्थित है। माइटोकोन्ड्रिया डीएनए की प्रतियाँ तैयार करने में प्रकृति द्वारा हुई भूलें आज मानव इतिहास को जानने की वैज्ञानिक तकनीक बन गई है। माइटोकोन्ड्रिया डीएनए की प्रतियों में उपस्थित इन भूलों को वैज्ञानिक भाषा में उत्परिवर्तन या पहचान चिन्ह कहते हैं। इन पहचान चिह्नों को सी.एम. एन.आर. आदि अक्षरों से पहचाना जाता हैं। पहचान चिह्नों के आधार पर पता चला है कि वर्तमान में भी सबसे प्राचीन प्रकार का मानव विआका, पिग्मी आदि वनवासियों के रूप में अफ्रीका में उपस्थित है। लगभग 80,000 वर्ष पूर्व अफ्रीका से निकल कर आधुनिक मानव ईरान, पाकिस्तान, दक्षिणी भारत के समुद्र किनारे किनारे धीरे-धीरे बढ़ता हुआ बंगलादेश, बर्मा, मलेशिया के समुद्र तक की यात्रा करता हुआ 45,000 वर्ष पूर्व ऑस्ट्रेलिया पहुँचा था। उस समय समुद्र तल आज की तुलना में 100 मीटर नीचे था। आदि मानव के आगे बढ़ने का मार्ग समुद्र के गर्भ में समा चुका है। भौतिक प्रमाण जुटाना तो अब सम्भव नहीं है। वनवासी जातियों के रूप में जैविक प्रमाण आज भी उपस्थित हैं।

आर्य-द्रविड़ विभाजन अप्राकृतिक

हैदराबाद स्थित कोशिका एवं आणविक जीवविज्ञान केन्द्र के वैज्ञानिकों ने अण्डमान व निकोबार के वनवासियों के माइटोकोन्ड्रिया डीएनए का अध्ययन किया था। ऐसा ही अध्ययन मलेशिया के ओरांग असली वनवासियों का किया गया। साइन्स पत्रिका में प्रकाशित शोधपत्र के अनुसार ये लोग अफ्रीका से निकले आदि मानवों के निकटतम सम्बन्धी है। भारत के लोगों में बाहरी तौर बहुत भिन्नता दिखाई देती है मगर माइटोकोन्ड्रिया डीएनए में भारतीयता के पहचान चिह्न समानता से मौजूद है। लन्दन के नेचुरल हिस्ट्री म्यूजियम में रखी अण्डमान निकोबार से जुटाई अस्थियों में भी भारतीयता के पहचान चिह्न पाए गए हैं। मैकाले व साथियों ने इण्डोनेशिया व ऑस्ट्रेलिया के वनवासियों की जाँच कर निष्कर्ष निकाला है कि वे लोग मानव की प्रथम महायात्रा के अवशेष हैं। वैज्ञानिक मानते हैं कि पश्चमी यूरोप के लोग भी, दक्षिणी मार्ग से आए लोगों की सन्तानें हैं। पश्चमी यूरोप के लोग अपनी मूल शाखा से अलग होकर हिमयुग की समाप्ति के बाद पश्चिमी यूरोप में पहुँचे होंगे।

वर्तमान भारतीयों के माइटोकोन्ड्रिया के डीएनए में एम.एन. तथा आर पहचान चिन्ह प्रधानता से पाए जाते हैं। ये चिन्ह भारत के पड़ौसी यूरोपीय एवं पूर्वी एशियाई लोगों में नहीं पाए जाते। 60 प्रतिशत भारतियों में एम चिन्ह उपस्थित है। यह इस बात का प्रतीक है कि भाषा, क्षेत्र या

जातीय भिन्नता के बावजूद आनुवंशिक स्तर पर भारतीयों में कोई विभाजन नहीं है। मातृपक्ष के रिश्ते से सभी भारतीय भाई-भाई हैं। अफ्रीका से निकलने के कुछ समय बाद आधुनिक मानव भारत पहुँच गया था। तब से निरन्तर यहाँ उपस्थित है। भारतीय संस्कृति इसी भू भाग पर पनपी तथा सनातन परम्परा आज भी कायम है। कुछ विभिन्नता दिखाई देती है वह समय के साथ भारत में ही उत्पन्न हुई है। भारत के बाहर अन्य स्थानों पर भारतीय आनुवंशिक चिह्नों की उपस्थिति भारत से बाहर गए लोगों का प्रतीक है।

उपरोक्त वैज्ञानिक सोच की पुष्टि में कुछ अन्य प्रमाण भी मिले हैं। इण्डोनेशिया में आए टोवा भूकम्प का मलबा उड़कर भारत के कई भागों में जमा हो गया था। क्वाटर्ज कणों के अध्ययन से ज्ञात हुआ कि मलबा लगभग 77,000 वर्ष पुराना है। मलबे की पर्त के नीचे तथा ऊपर पाए गए औजारों की समानता बताती है कि टोवा भूकम्प के समय में अफ्रीका से भारत आया मानव इतना विकसित हो चुका था कि टोवा भूकम्प की विपत्ति को झेल सका। साइन्स पत्रिका में छपे माईकल वाल्टर के एक शोध लेख में कहा गया कि 4500 वर्ष पूर्व भारत में चने, मूंग एवं अन्य अनाजों की कृषि होती थी। कृषि योग्य प्रजातियों का विकास भारतीय संस्कृति की प्राचीनता का प्रमाण है।

भारत में ही जला था पहला ज्ञानदीप

भारतीय समुदाय को आर्य व द्रविड में बाँटने का प्रमुख कारण भाषा का अन्तर रहा होगा। भारत में चार भाषा परिवारों की भाषाएँ बोली जाती हैं। उत्तर भारत में भारतीय-यूरोपीय परिवार की भाषाएँ, दक्षिणी भारत में द्रविड़ भाषाएँ, भारत के उत्तरी पूर्वी भाग में ऑस्ट्रो-एशियाटिक व चीनी-तिब्बती परिवारों की भाषाएँ बोली जाती है। भारतीय-यूरोपीय परिवार के भी चार उपसमूह हैं। उत्तर भारत में भारतीय-ईरानी उपसमूह की भाषाएँ संस्कृत, हिन्दी, प्राकृत, मराठी, बंगाली, गुजराती आदि अधिक प्रचलित हुई। दक्षिणी भारत में द्रविड़ परिवार की तेलगू, तमिल, कन्नड़, मलयालम, गोड़ी, तुलु आदि प्रचलित हुई। द्रविड़ भाषाओं के उदगम को लेकर अभी स्पष्टता नहीं है। कुछ लोग इन्हें भारतीय मानते हैं तो कुछ इनका सम्बन्ध सिन्धुघाटी, हंगेरियन, तुर्की, मंगोल आदि भाषाओं से भी जोड़ते हैं। उत्तर भारत में भारतीय-यूरोपीय परिवार की भाषाओं के प्रचलन से माना गया कि यूरोप व उत्तर भारत के लोग कभी सम्पर्क में थे। इसी से आर्यों के भारत आने तथा मूल निवासी द्रविड़ों को दक्षिण की ओर धकेलने की कहानी बनी।

भू भाग की विशालता को देखते हुए भारत में चार भाषा परिवारों का विकसित होना आश्चर्य की बात नहीं है। 2013 में जर्नल ऑफ लेंग्वेज रिलेशनशिप में प्रकाशित रूसी शोध में कहा गया है कि आनुवांशिक पहचान चिह्न आरएलए के प्रसार को भारतीय-यूरोपीय भाषा समूह के साथ जोड़ कर देखा जाय तो भारतीय-यूरोपीय भाषा समूह की उत्पति भारत में ही हुई थी। अब तब इस समूह का प्रसार पश्चिम से पूर्व की ओर माना जाता रहा है। मानव की प्रगति का मूल आधार भाषा ही है। प्रथम भाषा की उत्पति भारत में होने के कारण हम कह सकते हैं कि पृथ्वी पर प्रथम संस्कृति का उदय भारत में हुआ था। यजुर्वेद में भी कहा गया है कि **सा प्रथमा संस्कृति विश्ववारा** (हम विश्व की सबसे प्राचीन संस्कृति के संवाहक हैं)।

भाषा को सदैव आनुवांशिकता से जोड़ कर नहीं देखा जा सकता। विश्व में अन्यत्र भी ऐसे उदाहरण मिलते हैं जहाँ आनुवांशिक रूप से भिन्न समूह एक ही भाषा बोलते हैं। अंग्रजों ने भारत में राज किया। अंग्रेजी भाषा को स्थापित किया मगर भारत की आनुवांशिकता पर उसका कोई प्रभाव नहीं हुआ। जीव वैज्ञानिक अध्ययन भारत में विदेशियों के आने की बात का खण्डन तो नहीं करते मगर इतना अवश्य बताते हैं कि पिछले 10,000 वर्षों में भारत के उत्तरी पश्चमी गलियारे के लोगों की आनुवांशिकता में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। विदेशियों से केवल बाहरी सम्बन्ध ही बने जिससे भाषा संस्कृति आदि पर कुछ प्रभाव हुआ।

सिन्धुघाटी सभ्यता के उजड़ने का कारण

आर्यों द्वारा द्रविड़ों की सिन्धुघाटी सभ्यता को नष्ट करने की बात का खण्डन अन्य अनुसंधानों से भी होता है। 2014 में प्रकाशित एक अनुसंधान ने बताया है कि सिन्धुघाटी सभ्यता को किसी विदेशी हमले ने नहीं उजाड़ा था, अपितु प्राकृतिक आपदा सिन्धुघाटी सभ्यता के उजड़ने का कारण रही होगी। हरियाणा की प्राचीन कोल्टा झील की तलहटी से प्राप्त जीवाश्मों में आक्सीजन-18 समस्थानिकों की उपस्थिति के अध्ययन से केम्ब्रिज में कार्यरत भारतीय मूल के वैज्ञानिक यम दीक्षित ने निष्कर्ष निकाला है कि 4200 से 4000 वर्ष पूर्व निरन्तर 200 वर्षों तक सिन्धुघाटी क्षेत्र में मानसून रूठा रहा था। इस लम्बे सूखे ने सिन्धुघाटी सभ्यता के लोगों को पलायन के लिए मजबूर किया होगा। इन प्रमाणों से यह कहा जा सकता है कि भारत के लोगों को आर्य व द्रविड़ में बाँटने कोई आनुवांशिक आधार नहीं है। आर्यों द्वारा द्रविड़ों की सिन्धुघाटी सभ्यता को उजाड़ने की बात भी कपोल कल्पना है। भारतीय संस्कृति सनातन है तथा इसका प्रभाव विश्व की सभी संस्कृतियों पर हुआ है। सरस्वती नदी क्षेत्र के पुन: सृजन से यह सिद्ध हुआ है जिसे सिन्धुघाटी सभ्यता कहा गया वह वास्तव में सरस्वती घाटी या आर्य सभ्यता थी जो प्राकृतिक कारणों से पलायन कर भारत के विभिन्न भागों में फैल गई। ❑

(बाल साहित्य एवं विज्ञान विषयक लेखक)

Brahma's total life span is 100 years, that is Brahma years. This is 313,528, 320,000, 000 years, and Brahma is fifty years now. The present Kaliyuga began at midnight of 17th February in 3012 BCE. Indeed, it is impossible for a society to make such calculations simply for nothing. Did our ancestors use such knowledge? It is difficult for us to imagine how our ancestors must have put this knowledge to use, but if they had no use for it, they would have never created such knowledge. If the world can look at the Hindu time calculation alone, leave alone all other knowledge tradition, they will have no hesitation or doubts in their minds to accept Bharat as Visva Guru.

Bharatiya Unit of Time

❑ Dr. TS Girishkumar

It is a known fact that knowledge began in Bharat much before there were civilised societies elsewhere, and most of the societies getting civilised all over the world were related and connected to Bharat. We really can't be sure of the period of the Vedas, but with the available glimpses of information and logic, the period ofVedas should be also the period of the river Saraswati. Michel Danino, in his book "The Lost River : On the trail of river Saraswati" mentions that there were some 3700 Vedic settlements in three stages of time, and it is amazing to note that they had similar pattern of township, similar sizes of bricks and similar metric system. The Vedopanishadic knowledge tradition had created knowledge in perhaps every field, and they also have their own, well worked out metric system. Let us briefly look at the 'units of time' which were deftly worked out by our own ancestors. Time, 'Kala' is mentioned in units such as from microseconds to trillions of years. This also say that time is 'cyclical' and repeating ad-infinitum.

Varying units

Varying units for time are used in varying knowledge texts like the Vedas, Bhagavata Purana, Vishnu Purana, Mahabharata, Surya Siddhanta etc. but when we look at them, we shall see that they are varying only, not different, varying in degrees and not in kind. Nonetheless, they all eventually reach the same calculations and judgements. They are the 'Kalavyavahara' and it takes shape as follows:

Truti is the base unit of time, which is approximately 0.031 microseconds. 60 Truti becomes one Renu, which is 1.86 microseconds. 60 Renu makes one Lava, which is 0.11 milliseconds. 60 Lavas makes one Likshaka, which shall amount to 6.696 milliseconds. 60 Likshaka amounts to one Lipta, which is 0.401 seconds. 60 Lipta makes on Pala, which is 24.1056 seconds. 60 Pala is one Ghati, which is 24 minutes. 2 Ghati makes one Muhurta, which is 48 minutes. 60 Ghati becomes one Nakshatra Ahoratram, a sidereal day, 24 hours.

Another calculation goes this way: One Truti is 35.5 microseconds, 100

Truti is one Tatpara, which is 3.55 milliseconds, 30 Tatpara is one Nimesha, which is 106.7 milliseconds, 30 Nimesha becomes one Kastha, which is 3.2 seconds, 30 Kastha make one Kala, which is 1.6 minutes, 30 Kala becomes one Muhurta which is 48 minutes and 30 Muhurtas make one Nakshatra Ahoratram, which is 24 hours.

In the Vedas

The time unit found in the Vedas are as follows: One Paramanu is 26.3 microseconds, two Paramanu make one Anu, which is 52.67 microseconds, 3 Anu make one Trasaranu which is 158 microseconds, three Trasaranu make one Truti which is 474 microseconds, 100 Truti makes one Vedha which is 47.4 milliseconds, 3 Vedha make one Lava which is 0.14 seconds, 3 Lava make one Nimesha which is 0.43 seconds, 3 Nimesha make one Ksana which is 1.28 seconds, five Ksana make one Kastha which is 6.4 seconds, 15 Kastha make one Laghu which is 1.6 minutes, 15 Laghu make one Danda which is 24 minutes, 2 Danda make one Muhurta which is 48 minutes, and 30 Muhurtas make one Ahoratram which is 24 hours.

Reaching at the same figures when reaching a day

Here, interestingly, we can see that with varying initial units of time in varying texts, when it comes to the notion of day and night, it is 24 hours for all, and is called Ahoratram. Let us proceed further from One Ahoratram:

30 Ahoratrams, thirty days makes one Masa, which is one month, 2 Masa make one Ritu, 3 Ritus make one Ayana which is six months, and 2 Ayanas, which is 365 Ahoratrams makes one Samvatsaram, which is one year. One Samvatsaram is one Ahoratram of the Devas, which means one human year is one day for the Devas. There is also a Lunar Metrics, which is as follows:

A Tithi is a lunar day. The Tithi or one lunar day is the time taken for the longitude angle between the moon and the sun to increase by 12 degrees. Tithis begin at varying time on different days and shall also vary in duration. This may vary from 19 to 26 hours.

15 Tithis is one Paksa. One Paksa is one lunar fortnight. One lunar Masa is 2 Paksas, which is between new moon and full moon, and it amounts to 29.5 days. Two Masas makes one Ritu, 3 Ritus make one Ayana, and 2 Ayanas make one Samvatsaram.

Tropical Metrics

¼ of a day or night is 1 Yama. 1 Yama is equal to 7 ½ Ghatis, and 3 ¾ Muhurtas. 8 Yamas becomes one Ahoratram.

The Yuga calculations

According to Vishnupurana, Book I, Chapter III :

One Samvatsaram, or one human year, 2 Ayanas is one Ahoratram or day for the Devas or for Swargaloka.

Satya Yuga is 4000 + 400 + 400 = 4,800 Deva Samvatsaram. This shall be 1,728,000 human years.

Treta Yuga is 3000 + 300 + 300 = 3,600 Deva Samvatsaram. This is 1,296000 human years.

Dvapara Yuga is 2000 + 200 + 200 = Deva Samvatsaram. This is 8,64,000 human years.

Kali Yuga is 1000 + 100 + 100 = 1,200 Deva Samvatsaram. This is 4,32,000 human years.

Four Yugas together constitute 1 Mahayuga. 1 Mahayuga is 12,000 Deva Samvatsaram and 4,32,000 human years.

Brahma

1000 Mahayugas becomes one Kalpa. 1 Kalpa is 1 day, day only, of Brahma. 2 Kalpas - including day and night becomes one Divas of Brahma. So, 1000 Mahayugas + 1000 Mahayugas becomes one full day of Brahma, 2 Kalpas, and that is 8.64 Billion human years.

From here, the calculation starts going above our heads, to unimaginable quantum.

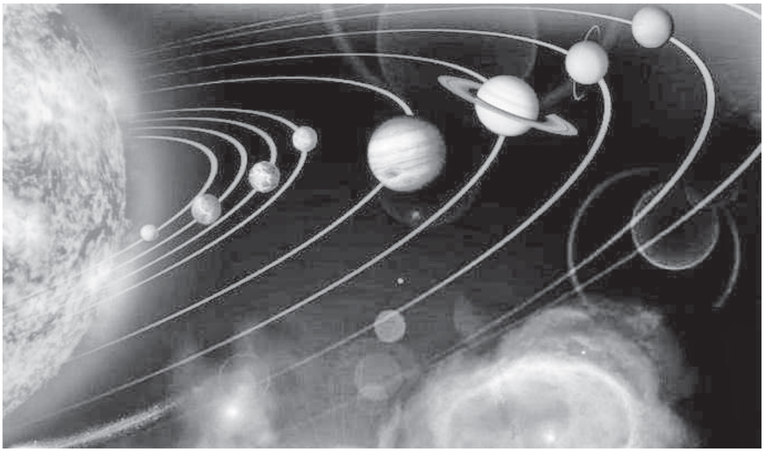

30 Brahma Ahoratrams, 1 month, is 259.2 Billion human years. 1 Samvatsaram of Brahma, 12 months is 3.1104 Trillion human years. 50 years of Brahma is 1 Parartha, which is 156,764, 160, 000, 000 human years.

1 day of Brahma is divided into 1000 Charanas. Thus, Satya Yuga is 4 Charanas equalling 1,728,000 human years. Treta Yuga is 3 Charanas equalling 1,296,000 human years. Dvapara Yuga is 2 Charanas equalling 864,000 human years. Kali Yuga is 1 Charana equalling 432,000 human years.

Bharatiya concept of time is cyclic, and the cycle keep repeating. In one day of Brahma, there are 1000 cycles of Mahayugas. 71 Mahayugas becomes one Manvantaram, which is 306,720,000 human years. Each Manvantaram is controlled and ruled by "Manu". And after each Manvantaram there shall be a Sandhikala, or Pralaya: from where creation of everything begins from zero. 14 Manvantarams make one Kalpa.

At present, Brahma is 50 years of age. Brahama's period is 100 years, and Brahma is now 50. The Kalpa at the end of 50 years was Padma Kalpa. At present we are on the first day of Brahma's 51st year, and the present Kalpa is Svetavaraha Kalpa. Six Manvantarams are already elapsed, and we are on the seventh Manvantaram. The name of the seventh Manvantaram is Vaivasvata Manvantaram.

We are in 28th Mahayuga, and already Satya, Treta, and Dvapara Yugas are elapsed. We are now in Kali Yuga, and this Kali Yuga is the Kali Yuga of 28th Mahayuga. The present Kali Yuga began in 3102 BCE. It began at midnight of 17/18, February, 3102 BCE. Since 50 Brahma Samvatsaram already elapsed, we are in second Parartha, Dvitiya Parartha.

Elapsed period of time from this Brahma's beginning

One year of Brahma is 8.64 x 10 raised to 9 x 30 x 12 = 3.1104 Trillin years. 50 years of Brahma is already elapsed, so the present Brahma is 3.1104 x 10 raised to 12 x 50 = 1.55.52 Trillion years old.

In the current Kalpa which is (6 x 71 x 4320000) + 7 x 1.728 x 10 raised to 6 = 1852416000 years elapsed in first six Manvantarams and Sandhikala in present Kalpa. Sandhikala is the point of Pralaya, end or destruction of everything, for another creation and another cycle to begin.

In the present Manvantaram, which is Vaivasvata Manvantaram, is the seventh Manvantaram. 27 Mahayugas are elapsed. That is 27 x 4320000 = 116640000 years. In the current Mahayuga 1.728 x 10 raised to 6 + 1.296 x 10 raised to 6 + 1.296 x 10 raised to 6 + 864000 = 3888000 years elapsed. Thus, the total elapsed time so far, as of 2018 AD is 155520000000000 + 1852416000 + 116640000 + 3888000 + 5119 = 155,521,972,949,119 years.

Brahma's total life span is 100 years, that is Brahma years. This is 313,528,320,000,000 years, and Brahma is fifty years now. The present Kaliyuga began at midnight of 17th February in 3012 BCE. Till now, 5120 years have elapsed, so present Kaliyuga has 426880 years more are left for its completion, from a total of 432,000 years of period, of the 28th Kaliyuga of this Vaivasvata Manvantaram.

Indeed, it is impossible for a society to make such calculations simply for nothing. Did our ancestors use such knowledge? It is difficult for us to imagine how our ancestors must have put this knowledge to use, but if they had no use for it, they would have never created such knowledge. If the world can look at the Hindu time calculation alone, leave alone all other knowledge tradition, they will have no hesitation or doubts in their minds to accept Bharat as Visva Guru.❑

(Professor of Philosophy, The Maharaja Sayajirao University of Baroda)

हमारी शक्ति- निर्बल को सबल, कमजोर और ताकत देने की थी, है, रहेगी। अन्याय का प्रतिकार, अन्धकार से निकल प्रकाश की खोज के साथ पूरे विश्व को साथ लेकर चलने का माद्दा इस भारत में है, केवल शक्ति नहीं, अध्यात्म के बल पर, निरंतर अनुसंधान अनुशीलन से हम विश्व में चरित्र निर्माण के जरिये एक नया वसुधैव कुटुम्बकम् बना सकते हैं, यह विश्वास हमें करना है, दुनिया तो हमें लेकर आश्वासित है ही । राजनीति से इतर समाज नीति की प्रतिष्ठा हो, केवल राजसत्ता की सर्वोच्चता समाज को पंगु बना देती है, फिर हर एक कार्य हेतु सरकार की और मुँह तकते रहना होगा।

लोकतान्त्रिक भारत का वैश्विक उत्तरदायित्व

❑ **आशुतोष जोशी**

उग्रा हि पृश्निमातरः (ऋ.1 ।23 ।10) अर्थात् – पृश्निमातरः =देशभक्त (हि) सचमुच (उग्राः) तेजस्वी होते हैं।

'पंथ कोई हो, पूजा पद्धति कोई भी हो, जाति कोई भी हो, भगवान कोई भी हो। सभी में एकता को बढ़ावा देना होगा। 'व्यक्ति–व्यक्ति में राम जगे, नीति–निपुण घनश्याम जगे' सूक्ति का प्रयोग करते हुए हमें सभी समाज में परिवर्तन और श्रेष्ठ आचरणों के निर्माण के लिए कार्य करना है, हमारा कार्य सकारात्मकता और धर्म नीति है। संवेदना, बंधुभाव उत्पन्न करना हमारा कार्य है। व्यक्ति आपस में एक–दूसरे का सहयोग करें, जाति, बिरादरी में भेदभाव करने वालों विफल हो ऐसे सभी उपायों को करने वाले समाज को तैयार करके राष्ट्र को सबल, सक्षम, बनाने का कार्य हम सभी को करना है। दुनिया अच्छी चीजों को तभी मानती है जब उसके पीछे कोई शक्ति खड़ी हो।'

आप कोई भी विचार को मानते हो, कुछ को अस्वीकार भी करते हो, सबके अपने–अपने मत हैं, विमत भी फिर भी जो अंश मैं यहाँ प्रस्तुत करते हुए लेखन को प्रवृत हो रहा हूँ – शायद उससे आप विमत तो नहीं रखेंगे, यह मानते हुए भी कि आपकी विचारधारा कोई भी–कुछ भी हो।

जिस ईशावास्यं इदं सर्वं को गुंजायमान करने का सन्देश वेद–वाणी देती है, उसके मूल में सेवा–संस्कार–सुचिता–सर्वकल्याण ही है, साथ ही साथ समावेशित है– केदारखंड में वेदव्यास प्रणीत महाकाव्यों का प्रदर्श–परोपकाराय पुण्याय पापाय पर पीड़नम्। सही तो कहा की हम एक है, वैचारिक मतभिन्नता के बाद भी तैंतीस कोटि देवी–देवताओं की भारतीयता तो नास्तिकता के संवाहक–संपोषक चार्वाक को भी मन्दिर के दहलीज–चबूतरे पर खड़े होकर अपनी बात करने–कहने का मौका देती रही है। सहिष्णुता जैसे मुद्दे भारतीय नहीं है, भारत पूर्णता में विश्वास करता है, जहाँ पूर्णता, साथ बैठने–चलने–आपसी मन–मस्तिष्क को जानते हुए सत–चित प्रयास से परिपूर्ण है कि कोई घटे क्यों? कोई कमजोर क्यों हो? **मा कश्चित् दुःखभाग्भवेत्** केवल सनातन संस्कृति ही कहती है ।

सत्य ऋतस्य पदम् कवयो निपान्ति॥

(ऋ. 10 ।5 ।2)

अर्थात् सत्य क्या है, इसको ज्ञानी जन ही जानते हैं। मैं इसकी समीक्षा नहीं कर रहा हूँ कि विश्व में कौनसी सभ्यता या कि संस्कृति, धर्म-नीति-आचार-विचार-परंपरा उत्कृष्ट है, जो शंकित-सशंकित है वे अतीत के इतिहास से वर्तमान तक को देखें, अपनी प्रतिक्रिया दें, स्वयं वर्तमान पुष्टि कर रहा है, कौन अव्वल है की बजाय कौन प्रामाणिक है, विश्वसनीय है यह पैमाना है-सकल परीक्षण का आधार। केवल इतना सा खाका प्रस्तुत करने का उपक्रम है कि मेरी परम्परा किस प्रकार इस मानव-संरचना के संरक्षण-संवर्धन-उन्नति हेतु कार्य कर सकती है। हमारे साथ वे सभी तकनीक संयुक्त हैं जो अनुभवाश्रित हैं- भारत की आंतरिक विविधता-विभिन्नता उसको और अधिक समृद्ध करती है।

अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥

अर्थात् यह मेरा है,वह पराया है, इस प्रकार की गणना तो छोटे चित्त-मन वाले लोग करते हैं, उदारचित्त व्यक्तियों के लिए तो सारी पृथ्वी ही परिवार है। **यत्र विश्वं भवत्येकनीडं** कुटुम्ब की अवधारणा किसी भी संकुचित-कट्टर-कबीलाई संस्कृति में है ही नहीं। बात भले ही कट्टरता की हो, होनी भी चाहिए सिद्धांत कहता भी यही है की वादे वादे जायते तत्वबोध, चर्चा होनी भी चाहिए, विषय भी होना चाहिए और उस पर विवाद-संवाद भी, पर सिरे से नकारने की प्रवृत्ति तो न हो, समकालीन समाज में जो वैचारिक-राजनैतिक अस्पृश्यता बढ़ी है, यह तो सही नहीं, केवल मैं ही सर्वोच्च और बाकी सब बे-काफी, घासफूस, तर्क नहीं और इस कारण सामाजिक नहीं होने से ये विचार केवल और केवल वैमनश्यता का संचार भर कर सकते हैं, यही सब कुछ तो हो रहा है, वैश्विक परिदृश्य में।

अबकी बार मेरठ फिर एक सन्देश दे रहा था कि यहाँ कोई सरयूपारणी न होकर चित्तपावन था, अतीत में वहाँ नेतृत्वकर्ता मंगल पांडे कारतूस में चर्बी के मुद्दे पर अग्रेसर बना, यह समस्या उनकी अकेले या उनके समूह भर की नहीं थी, सब जाति-धर्म और साथ ही साथ उस देश धर्म से जुड़ी थी जिसके लिए कोई पन्नाधाय-पद्मिनी-दुर्गावती-लक्ष्मीबाई जूझती रही। संघ प्रमुख मोहन राव भागवत जब सामाजिक समरसता की बात कह रहे थे तो उनका सन्देश दोनों ओर था, बाहरी षड्यंत्र और आपसी सदभाव का।

संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे सञ्जानाना उपासते।।
और ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु।
सह वीर्यं करवावहै।
तेजस्वि नावधीतमस्तु मा विद्विषावहै।
शान्तिः -3 ॥

यह संयुक्तता जिसकी थाती है, वही तो वास्तविकता और भारतीयता है, किसी को भी स्वीकारने को हम उद्यत है, पर तत्व तो हो, सत्य तो हो, करनी-कथनी का अंतर तो न हो, और अस्वीकारने का भाव सनातन में है ही नहीं, क्योंकि यह स्पष्ट है कि इस चराचर में कुछ भी निकृष्ट नहीं है, तभी तो हमारे जीवन में यह शब्द केवल अंतिम वाक्य या हेय वाक्य भर है। पर चन्दन और पादुका का साथ नियत है, यह भान-पहचान-विवेक-बुद्धि बनी रहनी चाहिए।

विज्ञान हो कि योग, भारत दुनिया का मार्गदर्शक स्वयमेव मृगेन्द्रता सूत्र से बना है, सिलिकॉन वैली हमें किसी ने भेंट या सौजन्य या कि सांत्वना स्वरूप नहीं दी,

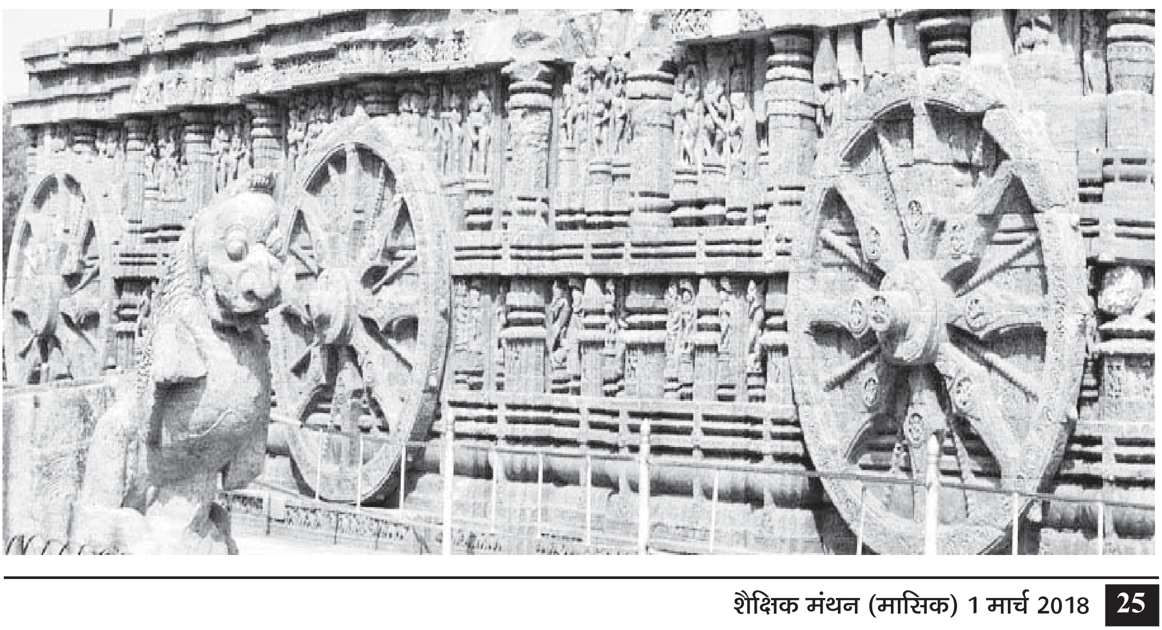

दुनिया ने योग को जाँचा-परखा तभी तो स्वीकार्यता दी, संयुक्त अरब अमीरात में जब हमारी आस्तिकता के स्थल की अनुमति मिली तो क्या हमने उसमें कोई ताकत या की युद्ध-दबाब का सहारा लिया? नहीं तो!

सही-सही कहूँ तो जब गर्व से मेरा मन-मस्तिष्क, उन्नत भाल होगा तो ही मैं किसी को प्रोत्साहित कर पाऊँगा, किसी को सहारा देने के काबिल और संबल देने की ताकत विकसित कर सकूँगा और यह भी तभी जबकि जिस परंपरा की दुहाई मैं देने जा रहा हूँ वो मेरे आचरण में भी हो। कठोर न बने, मृदु रहे, पर कमजोर नहीं, क्योंकि अक्षमता विनाश को आमंत्रित करती है, एक शास्त्रसम्मत उक्ति है कि -

अश्वं नैव गजं नैव व्याघ्रं नैव च नैव च ।
अजापुत्रं बलिं दद्यात् देवो दुर्बल घातकः ॥

न तो अश्व को, न गज को, न बाघ को और न किसी और को ही कभी बलि चढ़ाया जाता है. यदि किसी को बलि चढ़ाया जाता है तो बेचारे अजापुत्र (बकरी के बच्चे) को क्योंकि दुर्बल के लिए तो देव भी घातक सिद्ध हो सकते हैं । अंगद-नल-नील-जाम्बवंत द्वारा महर्षि वाल्मीकि और फिर बाबा तुलसी स्व-गौरव के ज्ञान हेतु कनक भूधराकार सरीरा, समर भयंकर अति बलबीरा को कहते हैं 'जानहु तुम बल बुद्धि विवेका' और 'कवन जो काज कठिन जग माहि' और उसके बाद गीता में अर्जुन का करिष्ये वचनं तव, नारी सम्मान को पद-प्रतिष्ठित करता है। वध; दुर्योधन का हो कि रावण-कंस-बाली का हर कहीं सामाजिक अनुशासन बतलाया गया है और नारी को अबला मान कोई भी किया गया कुत्सित प्रयास ने अंततः विनाश का संवाहक बन बड़ी सी बड़ी सत्ता को धरातल पर ला खड़ा किया।

इसलिए यह सही है कि आवरण-स्वरूप सौम्य हो,पर! साथ ही साथ सक्षम बनाने-बनने की वर्तमानकालिक आवश्यकता को समझते रहें, ओर उसके लिए यह जरूरी है की प्रत्यक्ष काम, सामूहिकता, सामाजिकता, समरसता, अनुशासन, तपस्या, साधना, अकारण वैर-भाव नहीं, सतत साधना, तन-मन-बुद्धि शुचिता के साथ क्रियाशील होना। 'अश्मा भवतु नस्तनूः' (ऋ. 6.75.12) अर्थात् हमारे शरीर वज्र की भांति सशक्त व सबल होने चाहिए। बीमार होकर जीना पाप व अपराध है । प्रदर्शन नहीं, प्रत्यक्ष सामाजिक जीवन को दैनिक जीवनचर्या का अंग बनाते हुए दुनिया को मार्गदर्शन देने का प्रक्रम विचारना और इस निष्कर्ष से आगे की राह, परिवार-समाज-देश के प्रति निस्वार्थ भाव से सोचते हुए क्रियाशील होना, कर्तव्यशील नागरिक की पहचान है। शिक्षक ज्ञान दें, उससे प्रादुर्भूत विज्ञान सृजन करें, विकास सतत् हो और उन सबमें प्रकृति की सर्वोच्चता की अवहेलना न हो ।वृक्ष, पर्वत, मूर्ति, मिट्टी, जल सबकी प्रार्थना-आराधना में मूल तो एक ही है, सार्वभौमिक अन्योन्याश्रित भाव। विशाल हिमालय, विस्तृत सागर से घिरा, षडऋतु, सदानीरा नदियों का बहना, सूर्य-चंद्रमा सहित अनेक ग्रह-गोचरों से संचालित यह भारतीय मनीषा, निरंतन समग्रता में सोचती है।

केवल सुविधाओं से ही शांति, सौमनस्यता का सृजन नहीं होता, व्यक्ति-समाज-वातावरण-सृष्टि क्रमशः एक दूसरे की धुरी होती है, उनका आचरण-व्यवहार एक साथ सृजन-विनाश दोनों का उत्प्रेरक हो सकता है। दुर्जनों और सत्पुरुषों का (व्यवहार) विपरीत होता है। दुर्जनों की विद्या, **विद्या विवादाय धनं मदाय शक्तिः परेषां परपीडनाय** अर्थात् - विवादार्थ, धन प्रदर्शन और शक्ति परपीडन के लिये होती है; देख लीजिये पहले अफगानिस्तान, इराक और अब सीरिया, इससे इतर सत्पुरुष की विद्या, ज्ञानाय दानाय च रक्षणाय अर्थात-विद्या ज्ञानार्थ, धन दानार्थ और शक्ति (अन्य के) रक्षण के लिये होती है, दुनिया में सबसे अधिक, ज्ञान-विज्ञान के उपग्रह भारत ने ही प्रक्षेपित किये हैं, इस दृष्टि से भी देखें तो परमाणु की दहलीज पर बैठे इस विश्व में सज्जन के नाते हमारे उत्तरदायित्व और अधिक बढ़ चले हैं।

सनातन हर एक को सम्मान देता है, सबकी आवश्यकता को जानता-समझाता है, तभी तो हमने अर्थ-काम की उपेक्षा नहीं की उसको भी पुरुषार्थ चतुष्टय में स्थान दिया, क्योंकि सृजन-विकास हेतु हर एक तत्व महत्त्वपूर्ण है, पर वह केवल भोग हो जाए तो अधोगति की क्रिया प्रचलित हो जाती है ।

सजगता से ओत-प्रोत उद्यमी व्यक्तित्व, आदर्श प्रयोजन और प्रयोजन जीवन योग्य धर्म की ओर हो, जब करने की ललक हो तो उत्कंठा भी हो, शाश्वत-चिंतन केवल सिद्धांत भर नहीं हो, प्रत्यक्ष भी दिखें, साक्षात्कार हो तो सत्य भी हो, सम्पूर्ण अस्तित्व की अनुभूति भी, ऐसे व्यक्तित्व से विश्व को दिशा दी जा सकती है, भारत को, भारतीयों को इसी इकाई-दहाई-सैंकड़े को विस्तारित करना है, क्योंकि यदा-यदा ही... की स्थिति में जिसकी और देखा गया वो यह आर्यवर्त ही रहा था।

कहने को इस देश में सबसे अधिक विविधता है जो भाषा, धर्म, मत, रीति-रिवाज, पूजा, सम्पन्नता कम ज्यादा, शहरी-ग्रामीण-विपन्नता के रूप में या अन्यान्य रूप

में देखी-सुनी जाती है, पर जहाँ पूर्ण सामर्थ्य हो वहाँ ये सब एकता की विविधता हो जाती है न कि विविधता की एकता, हम-आप इसको विविधताओं का उत्सव कहते है, देखिये देश को खान-पान आदि आदि को कितना ऐश्वर्य रचा-बसा है इस नमस्ते सदा वत्सले मातृभूमि में ।

राम, आदर्श है तो इसलिए की वह मर्यादा पुरुषोत्तम है, रघुकल रीत सदा चली आयी, प्राण जाई पर वचन न जाई को ध्येय मान माता-पिता की आज्ञा को शिरोधार्य कर, समस्त ऐश्वर्य-सत्ता-पद-प्रतिष्ठा और उससे जुड़े सभी विषयों को त्याग कर, आततायियों से सामाजिक-राष्ट्रीय जीवन को मुक्त करने का दायित्व, कोई आदर्श ही कर सकता है। बंधु-बांधव-पत्नी का त्याग केवल और केवल प्रजाहित में करने वाला स्वत: ही देवत्वं प्रतिपद्यन्ते यदनुग्रहतो जना: को सार्थक अभिव्यक्ति देता है।

धनपति का सम्मान, स्मरण नहीं उसके योगदान-दान को महत्ता देने वाला भारतीय समाज है, किसी के लिए आदर्श है। जितना मातृभूमि की मुक्ति के लिए संघर्षरत- हूँ भूख मरूं, हूँ प्यास मरूं, मेवाड़ धरा आजाद रवै, हूँ घोर उजाड़ां में भटकूं, पण मन में मां री याद रवै, लोही री नदी बहा द्यूं ला, हूँ अथक लडूं ला दिल्ली स्यूँ, उजड्यो मेवाड़ बसा द्यूं ला वाले राणा-महाराणा प्रताप को सम्मान-गौरव मिला, उसमें मूल प्रेरणा-पूंजी स्रोत भामाशाह के योगदान को भी उतना ही सम्मान दिया गया है - राणा के पास नहीं पैसा, पैसे के बिना नहीं सेना। तब भामाशाह बढ़ा आगे, लेकर रुपया पैसा गहना।। वह धन क्या अवसर आने पर जो, त्यागभाव दिखला ना सका। वह चंदन भी क्या चंदन है, जो अपना वन महका न सका।

आज चिकित्सा क्षेत्र में जो विश्वसनीयता बढ़ी है उसका कारण सेवा-सुश्रुषा के साथ की उस इलाज का आसान-सस्ता होना भी है, अंतरिक्ष का उदाहरण, समुद्र-ध्रुवों में हमारा अनुसंधान मानवीय पुट के कारण ही तो सर्वस्वीकार्य बना है। यह आचरण विश्वास है, यह तमाम शक्तियों के बाद भी भारत को सम्मान से देखता है, इसको बनायें रखने में सर्वस्व न्योछावर करने की हमारी सहृदयता मूल में है। आज भी भारतीय जहाँ कही भी बसा वहाँ की उन्नति में उसने महती भूमिका निभायी, उस भूमि को अपना माना, भारत के प्रति उसका अनुराग वहाँ किसी भी प्रकार बाधा नहीं बना, अपनी पितृभू-मातृभू को नहीं भूला । शायद ही कोई देश इस दुनिया में हो जहाँ भारतीयों ने अपनी धाक को प्रतिस्थापित-प्रतिष्ठित नहीं किया हो।

इसलिए मूल्य सत्य का प्रणिधान, सतत त्याग-सेवा-संयम-परोपकार-कृतघ्नता इन सब भारत के समावेशित मूल्य और आचरण का उपदेश, नियम जो की हमारे सभी मतों, सम्प्रदायों का एक है, सब सत्य-अहिंसा-दम-अस्तेय-इन्द्रिय निग्रह-अपरिग्रह से अनुप्राणित है और सबका प्रस्थान बिंदु-परिणाम भी एक है, जो जिसका मत है उसको सत्य निष्ठा से पालन करते रहे इस भान के साथ की यह राष्ट्र भी मेरा है और यह चराचर जगत भी, दायित्व जिम्मेदार के ही होते हैं, सवाल-जवाब भी, जो केवल कोसते रहते हैं, दर्शक बन, वे केवल तमाशाई होते है, आदतन चाटुकार भी।

सनातन भाव है की विश्व में शांति-सौमनस्यता विस्तीर्ण रूप से फले-फूले। इसके लिए सामर्थ्य हम भारतीयों में है, क्योंकि हमारी कट्टरता का बल, हमारी उदारता में ही सन्निहित है, शास्त्र कहता है की- इंद्रम् वर्धन्तो अप्तुर: कृण्वन्तो विश्वमार्यम् । अपघ्नन्तो अराव्ण: ॥ (ऋ.9 .63.5) अर्थात् क्रियाशील बनो, प्रभु-महिमा का प्रचार करो, ऐश्वर्य को बढ़ाओ, विश्व को आर्य बनाओ, राक्षसों का संहार करो।

हमारी शक्ति- निर्बल को सबल, कमजोर और ताकत देने की थी, है, रहेगी। अन्याय का प्रतिकार, अन्धकार से निकल प्रकाश की खोज के साथ पूरे विश्व को साथ लेकर चलने का माद्दा इस भारत में है, केवल शक्ति नहीं, अध्यात्म के बल पर, निरंतर अनुसंधान अनुशीलन से हम विश्व में चरित्र निर्माण के जरिये एक नया वसुधैव कुटुम्बकम् बना सकते हैं, यह विश्वास हमें करना है, दुनिया तो हमें लेकर आश्वासित है ही ।

राजनीति से इतर समाज नीति की प्रतिष्ठा हो, केवल राजसत्ता की सर्वोच्चता समाज को पंगु बना देती है, फिर हर एक कार्य हेतु सरकार की और मुँह तकते रहना होगा। हर एक जो, जहाँ है वहाँ से प्रयास करे। और हाँ, किसी भी स्थान पर सार्वजनिक आह्वान को केवल नजरिये से देखने की आदत, उसको चुनाव-शक्ति प्रदर्शन जैसे भारी भरकम शब्दों से जोड़ समाज की महत्ता कम करने की आदत थोड़ी-थोड़ी बदलनी चाहिए। कल इसी सोच-भावना के साथ कोई और भी उद्‌गार प्रकट करें, सद्भाव-मानवता से जुटा एकत्रीकरण देश समाज की दशा को सुधार नयी दिशा दे सकता है। सौमनस्य संवर्धन हेतु, मतभेद भी, मनभेद भी भुला दिए जाएँ तो कोई हर्ज नहीं, अंतत: चाहता तो हर कोई एक ही है 'विजयी विश्व तिरंगा प्यारा झंडा ऊँचा रहे हमारा'। ❑

(भारतीय युवा संसद के संस्थापक)

आत्म-नियन्त्रण एवं सफलता

❑ प्रो. जमनालाल बायती

युवा होते किसी भी विद्यार्थी के जीवन में शिक्षा महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है, फिर चाहे वह विद्यालय के कक्षा-कक्ष में कोई व्याख्यान सुन रहा हो या निवास पर किसी कार्य को निपटाने में व्यस्त हो या शयन कक्ष में किसी समस्या के हल के लिए विचारों की उधेड़बुन में व्यस्त हो या विद्यालय का गृहकार्य निपटा रहा हो। अन्य किसी कार्य में व्यस्त हो- वह सदैव यह इच्छा करता है कि वह अपने अल्प मित्रों से श्रेष्ठ दीखे, उसका किया कार्य मित्रों के कार्य से पृथक दीखे,उसका कार्य उच्च गुणवत्तापूर्ण पृथक ही दीखे। अपने कार्य की ऐसी उच्च श्रेणी की सफलता प्राप्त करने के लिये या गुणानुक्रम के सन्दर्भ में श्रेष्ठ स्थान प्राप्त करने के लिये मुख्यत: आत्म-नियंत्रण अति आवश्यक है।

शिक्षा एवं बाल विकास से जुड़ी शब्दावली शिक्षकों, माता-पिता तथा अभिभावकों में सदा ही चर्चा का बिन्दु रही है। व्यवहार, चरित्र, आदत, बुद्धि, अघटित, सम्प्राप्ति, विकास, व्यक्तित्व, भाव, शारीरिक वृद्धि, सहपाठी आदि शब्दों पर शिक्षण से जुड़े व्यक्तियों, अभिभावकों तथा माता-पिता को विचार विमर्श करते देखा जा सकता है। इसी प्रकार के शब्दों में आत्म-नियंत्रण भी जोड़ा जा सकता है। शोध की दृष्टि से भारत में यह विषय अभी अधृताही माना जाना चाहिये। पिछले आठ-दस वर्षों से छात्र के आत्म नियंत्रण तथा उसकी सफलता या उपलब्धि पर गहनता से विचार किया जाने लगा है।

युवा होते किसी भी विद्यार्थी के जीवन में शिक्षा महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है, फिर चाहे वह विद्यालय के कक्षा-कक्ष में कोई व्याख्यान सुन रहा हो या निवास पर किसी कार्य को निपटाने में व्यस्त हो या शयन कक्ष में किसी समस्या के हल के लिए विचारों की उधेड़बुन में व्यस्त हो या विद्यालय का गृहकार्य निपटा रहा हो। अन्य किसी कार्य में व्यस्त हो- वह सदैव यह इच्छा करता है कि वह अपने अल्प मित्रों से श्रेष्ठ दीखे, उसका किया कार्य मित्रों के कार्य से पृथक दीखे,उसका कार्य उच्च गुणवत्तापूर्ण पृथक ही दीखे। अपने कार्य की ऐसी उच्च श्रेणी की सफलता प्राप्त करने के लिये या गुणानुक्रम के सन्दर्भ में श्रेष्ठ स्थान प्राप्त करने के लिये मुख्यत: आत्म-नियंत्रण अति आवश्यक है। पर साथ ही यह आत्म नियन्त्रण छात्र की बुद्धिलब्धि, आनन्ददायी अधिगम की स्थितियाँ तथा छात्र की सहज एवं स्वतन्त्र शैक्षिक गतिविधियाँ, कार्यकलाप या हलचल पर भी निर्भर करता है।

भारतवर्ष में पिछले 18-20 वर्षों से इस प्रकार के विचारों का शिक्षा से जुड़े प्रशासकों तथा अधिकारियों में बड़ा विचारणीय एवं महत्त्वपूर्ण विषय बना हुआ है। आज जब दबाव या तनाव मुक्त शिक्षा की बात की जाती है तो ऐसी विचारधारा का महत्त्व और भी बढ़ जाता है। आज जब कहीं भी शिक्षा में सुधार की बात की जाती है तो तनावमुक्त शिक्षण अधिगम घटक को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया जाता है।

किसी छात्र को मिठाई का एक टुकड़ा दे कर कहा जाय कि इसे खाना नहीं है, आप आगे की सूचना की प्रतीक्षा कीजिये। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार सफलता के मार्ग पर आगे बढ़ने का यही रोड़ा है, मिठाई का लालच बच्चे को एकाग्रचित बनने नहीं देता।

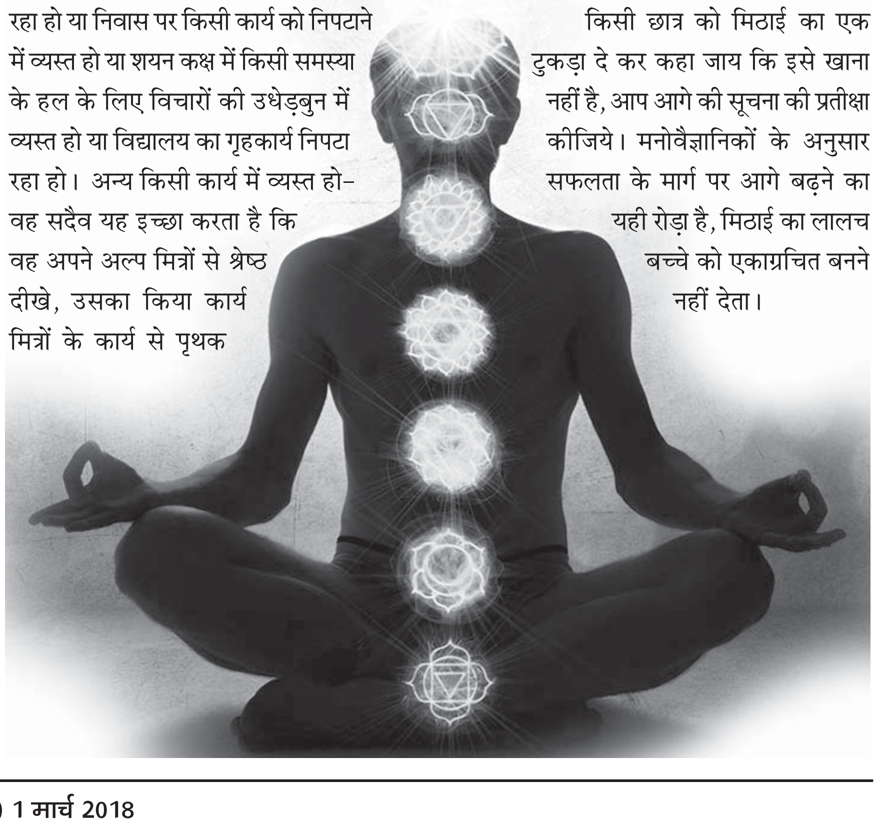

आठवीं कक्षा के 304 विद्यार्थियों के अध्यापकों तथा माता-पिता द्वारा उनके पाल्यों के आत्म नियन्त्रण पर दीर्घकालिक अध्ययन किया गया। उन्होंने अपने अध्ययन में पाया कि समान बुद्धिलब्धि वाले छात्रों का आत्म-नियन्त्रण भी समान रूप से उच्च स्तर का है। इसके विपरीत कुछ उच्च आत्म नियंत्रण वाले विद्यार्थी विद्यालय के कार्यकलापों में अनुपस्थित भी पाये गये पर वे पढ़ने में अधिक समय लगाते हैं और दूरदर्शन के लिए कम समय लगाते हैं।

डकवर्ग, विश्वविद्यालय में अध्यापन कार्य करने से पूर्व छोटे बच्चों को पढ़ाते थे। उन्होंने अपने अध्ययन में पाया कि आठवीं कक्षा के विद्यार्थी उच्च शैक्षिक उपलब्धि चाहते हैं। वे बताते हैं कि उन्हें कोई ऐसा बच्चा नहीं मिला जो निम्न शैक्षिक उपलब्धि चाहता हो, पर सभी छात्रों की दैनिक व्यवहार की गतिविधियाँ समान नहीं थी अर्थात् वे दिन भर समान कार्य नहीं करते थे, ऐसे विद्यार्थी स्कूल का गृह कार्य पूरा करने में एक समान नहीं थे जबकि वे कक्षा में समान रूप से उपस्थित रहते थे।

उन्होंने न्यूजीलैण्ड में भी 1000 विद्यार्थियों पर एक अन्य शोध में पाया कि आत्म-नियन्त्रण का आर्थिक सुरक्षा, आय, शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य, बुद्धि चातुर्य तथा सामाजिक आर्थिक स्तर पर उच्च सह-सम्बन्ध पाया।

आत्म-नियन्त्रण को जब स्वचेतना से जोड़ दिया जाय तो किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व के 5 गुणों का अंकन हो पाता है तथा इन 5 तत्वों/ गुणों के आधार पर व्यक्ति की सफलता का मापन किया जा सकता है। डकवर्ग बताते हैं कि आत्म-नियन्त्रण कितनी लम्बी अवधि तक किया जा सकता है? क्या यह अवधि प्रातः, दोपहर तथा संध्या में एक समान न ही रहती है। छोटी आयु के छात्रों को आत्म-नियन्त्रण के लिए सजग करना, उन्हें प्रेरित करना या तत्पर बनाना सरल कार्य नहीं है। डकवर्ग के अनुसार छात्र कुछ कार्य बड़े उत्साह से करते हैं पर साथ ही वे करण का कार्य भूल जाते हैं तथा वे स्कूल का कार्य उदासीनता से निपटाते हैं- इसके लिये वे सेलफोन का उदाहरण देते हैं। इन दुविधाओं या अन्तर्विरोधों से बचने का मार्ग वे बताते हैं सुविधाओं की संख्या बढ़ाना तथा कष्टदायी स्थितियाँ न्यूनातिन्यून करना। इस प्रकार डकवर्ग छात्र समुदाय को हित चिन्तक समझे जाते हैं। ❑

(पूर्व वरिष्ठ संपादक शिविरा पत्रिका)

दिल्ली अध्यापक परिषद द्वारा कर्तव्य बोध के कार्यक्रम सम्पन्न

दिल्ली अध्यापक परिषद की पूर्वी दिल्ली नगर निगम इकाई द्वारा नगर निगम प्राथमिक विद्यालय न्यू अशोक नगर में कर्तव्य बोध कार्यक्रम का आयोजन हुआ। कार्यक्रम में संगठन का परिचय देते हुए प्रांत संगठन मंत्री राजेंद्र गोयल ने बताया कि सन 1971 से राष्ट्रहित, छात्रहित एवं शिक्षक हित में परिषद लगातार चार निकायों में राजकीय निकाय, नगर निगम निकाय, नई दिल्ली नगरपालिका निकाय एवं सहायता प्राप्त निकाय में सक्रिय रूप से कार्य कर रही है। राष्ट्रीय विचारधारा से ओतप्रोत कार्यकर्ता जहाँ शिक्षकों की समस्याओं को उचित ढंग से अपने अधिकारियों के समक्ष समाधान के साथ रखते हैं वहीं राष्ट्र हित को ध्यान में रखते हुए छात्र हितों का भी पूरा ध्यान रखते हैं।

मुख्य वक्ता अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ के मध्य उत्तर क्षेत्र प्रमुख जगदीश चौहान ने बताया कि सन 1964 एवं 1966 के शिक्षक अधिवेशन में राष्ट्रवादी विचारधारा वाले शिक्षक व विचारधारा की कमी को देखते हुए दिल्ली अध्यापक परिषद का गठन किया गया। देश के सभी राज्यों में कार्यरत अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ राष्ट्रवादी विचारधारा वाले शिक्षक संगठनों को अपने साथ मिलाकर शिक्षकों में राष्ट्रीय भावना आए इसकी लगातार चिंता करता रहा है। कभी-कभी मन में आता है कि शिक्षक जो देश को कर्तव्य बोध कराता हो, उसे इस आयोजन की क्या आवश्यकता है। परिषद का मानना है कि बार-बार कर्तव्य बोध को दोहराने से वह संस्कारों में परिवर्तित हो जाता है वही परिवर्तित संवर्धित शिक्षक समाज का दर्पण होता है।

इसी प्रकार दिल्ली अध्यापक परिषद जिला दक्षिण पूर्व ने राजकीय उच्चतम माध्यमिक बाल विद्यालय तुगलकाबाद विस्तार में कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। कार्यक्रम के मुख्य अतिथि पी.सी. शर्मा डीडीई जोन 29, मुख्य वक्ता जयभगवान गोयल, अध्यक्ष दिल्ली अध्यापक परिषद ने अपने वक्तव्य में विद्यार्थियों के साथ जुड़ाव व उनके जीवन को संवारने के लिए, अपने जीवन के कुछ उदाहरण रखे। उन्होंने कहा कि केवल अध्यापक ही है जो हिंदुस्तान को फिर से विश्व गुरु के पद पर आसीन कर सकता है क्योंकि केवल उसी में ऐसी क्षमता है। मुख्य अतिथि पी.सी. शर्मा ने कहा कि अगर हम सब केवल आज के वक्तव्य को ध्यान में रखें तो समाज में बहुत बड़ा परिवर्तन ला सकते हैं। इस अवसर पर कई गणमान्य लोग उपस्थित रहे।

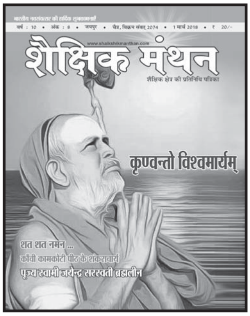

निजीकरण के युग ने शिक्षा प्रणाली को भी प्रभावित किया है। शिक्षा के क्षेत्र में जो क्रांति आई है उसका श्रेय इंटरनेट को दिया जाना चाहिए। यह इंटरनेट का ही कमाल है कि आज पूरी दुनिया एक क्लिक के साथ हमारे सामने होती है और यह संभव हो पाया है ई-लर्निंग के कारण। आने वाले समय में भी एजुकेशन सिस्टम में तेजी से बदलाव होगा। इसकी वजह है शिक्षा के क्षेत्र में डिजिटलीकरण का बढ़ता दखल। इससे नौकरियों में टेक्नो फ्रेंडली लोगों को महत्त्व मिलेगा और जो लोग स्कूल-कॉलेज जाने में असमर्थ हैं, उन्हें घर बैठे ऑनलाइन डिग्री और सर्टिफिकेट मुहैया होंगे।

परिसर मुक्त पढ़ाई

❑ **नाज़ खान**

आज सभी बच्चों तक पढ़ाई-लिखाई की सुविधाएँ उपलब्ध कराना दुनिया भर में बड़ी चुनौती है। खासकर भारत जैसे विशाल जनसंख्या और बीच में पढ़ाई छोड़ देने वाले बच्चों की ऊँची दर वाले देशों में सभी तक शिक्षा की पहुँच बनाना कठिन हुआ है। मुक्त विद्यालयी और विश्वविद्यालयी संस्थानों और पत्राचार पाठ्यक्रमों के जरिए भी इस समस्या पर काबू पाना आसान नहीं लगता। ऐसे में इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों के जरिए पढ़ाई-लिखाई यानी ई-लर्निंग की व्यवस्था को वरदान की तरह देखा जा रहा है।

डिजिटल युग में तकनीक ने जीवन की बहुत सारी कठिनाइयों को आसान बना दिया है। इन्हीं में से एक है ई-एजुकेशन। इसकी वजह से आज शिक्षा का भी स्वरूप बदलने लगा है। अब जरूरी नहीं कि शिक्षा के लिए कहीं जाकर और अध्यापक के सामने बैठ कर ही पढ़ाई की जाए, बल्कि तकनीक के सहारे एक क्लिक पर अब यह सुविधा घर बैठे उपलब्ध है। वहीं भारत में लगातार बढ़ती जनसंख्या, विश्वविद्यालयों पर बढ़ते छात्रों के बोझ और इससे प्रभावित होती शिक्षा को देखते हुए ऑनलाइन लर्निंग कहीं अधिक सहूलियत भरी लगती है। आज ऑनलाइन लर्निंग एक नई क्रांति है। भारत में ऑनलाइन एजुकेशन के क्षेत्र में जिस तरह प्रगति हो रही है, उससे उम्मीद है कि आने वाले समय में यह और बड़े स्तर पर लोगों की पहुँच तक आसानी से उपलब्ध होगी। आज तमाम विश्वविद्यालय परिसर मुक्त शिक्षा को बढ़ावा देने पर जोर दे रहे हैं। मानव संसाधन विकास मंत्रालय भी इसके लिए परियोजनाओं को प्रश्रय दे रहा है। राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी संस्थान और इंदिरा गाँधी मुक्त विश्वविद्यालय तो बरसों से परिसर मुक्त शिक्षा की दिशा में अग्रसर हैं। तमाम विश्वविद्यालयों में पत्राचार पाठ्यक्रम भी चलाए जाते हैं, पर जबसे डिजिटल और आनलाइन माध्यमों से शिक्षा के प्रसार का द्वार खुला है, ई-लर्निंग की अपार संभावनाएँ विकसित हुई हैं। भारत जैसे विशाल जनसंख्या वाले और बच्चों के बीच में स्कूल छोड़ने की ऊँची दर वाले देश में इसके जरिए न सिर्फ साक्षरता बढ़ाने, बल्कि परंपरागत रोजगारों से जुड़े रह कर भी उच्च शिक्षा तक पहुँचने का

रास्ता खोलना आसान हो गया है। इसलिए प्राथमिक से लेकर उच्च शिक्षा की तमाम शाखाओं में ई–लर्निंग के पाठ्यक्रम तैयार किए जा रहे हैं। यहाँ तक कि अभी अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान जैसे संस्थान ने भी ऑन लाइन चिकित्सा विज्ञान की पढ़ाई की परियोजना विकसित की है। आज स्मार्ट फोन और ऐप सिर्फ मनोरंजन का साधन नहीं रहे, बल्कि इनके जरिए शिक्षा पाना आसान और रोचक भी हुआ है। अब घर ही आभासी कक्षा में तब्दील हो गया है, जहाँ बैठे–बैठे ही आला दर्जे के शिक्षक आपकी तमाम जिज्ञासाओं का समाधान करते स्क्रीन पर नजर आते हैं। वर्चुअल क्लासरूम ने पढ़ाई को आसान बनाया है और साथ ही शिक्षा की गुणवत्ता में भी इजाफा किया है। इससे शिक्षा का प्रसार हुआ है और रोजगार के नए अवसर भी उपलब्ध हो रहे हैं। ऑन लाइन एजुकेशन के जरिए अब घर बैठे ऑक्सफर्ड, हार्वर्ड, एमआइटी, आइआइटी सहित दुनिया के कई बड़े विश्वविद्यालयों से पढ़ाई की जा सकती है। भारत में रहते हुए विदेशी विश्वविद्यालय से डिग्री हासिल कर सकते हैं। इसके लिए अब न तो अधिक रुपए खर्च करने की जरूरत है और न ही दूर जाने की। ऐसे में ई–लर्निंग के अब कई तरीके भी विकसित हो रहे हैं। ओपन कंटेंट यानी इंटरनेट पर मौजूद ऐसी जानकारी या पाठ्यसामग्री, जो कहीं भी किसी भी उपभोक्ता के लिए मुफ्त या बेहद कम कीमत पर उपलब्ध हो। इनमें सेल्फ लर्निंग के अलावा ऑन लाइन डिस्कशन ग्रुप्स और विकीपीडिया आधारित कोलैबोरेटिव लर्निंग यानी दुनिया के अन्य लोगों के साथ मिलजुल कर की जाने वाली पढ़ाई शामिल है। अब लगभग हर तरह के पाठ्यक्रम ऑन लाइन उपलब्ध हैं। इनमें कम्प्यूटर एनेलेटिक्स, डाटा–साईंस, मौसम विज्ञान, ऐतिहासिक घटनाओं का लेखा–जोखा, समाज विज्ञान आदि शामिल हैं। भारत में इंटरनेट और स्मार्टफोन के साथ ही ऑन लाइन लर्निंग का भी दायरा बढ़ रहा है। ऐसे में ऑन लाइन कोर्स कराने वाली कुछ संस्थाओं की तरफ से ऑन लाइन शिक्षा मोबाइल के जरिए कराए जाने पर भी ध्यान दिया जा रहा है और इस तरह के कई ऐप भी आज मौजूद हैं। युवाओं को आज जिस गुणवत्तापूर्ण सामग्री की जरूरत है, वह उन्हें ऑन लाइन एजुकेशन के जरिए मिल रही है। आज ई–लर्निंग की लोकप्रियता का आलम यह है कि अमेरिका के बाद अब सबसे ज्यादा ऑन लाइन कोर्स करने वाले रजिस्टर्ड उपभोक्ता भारत के हैं। ई–लर्निंग का कारोबार बढ़ने से ऑन लाइन ट्यूटर्स की भी एक नई जमात तैयार हो रही है। उन्हें घर बैठे रोजगार मिल गया है। 2017 में ऑन लाइन एजुकेशन मार्केट के करीब चालीस अरब डॉलर के आसपास पहुँचने का अनुमान लगाया गया था। ई–लर्निंग और वर्चुअल क्लासेज के अलावा अब ई–लाइब्रेरी और ई–स्टडी का चलन अब छोटे शहरों में भी बढ़ने लगा है। छात्र अब कम समय में उपयोगी सामग्री चुन कर स्टडी करना ज्यादा पसंद करते हैं और इसके लिए वे ई–लर्निंग चुन रहे हैं, ताकि उनकी पढ़ाई आसान और कम समय में बेहतर तरीके से हो।

चर्चित शिक्षाविद् सलमान खान की कैलिफोर्निया स्थित 'खान एकेडमी' मुफ्त ऑन लाइन लर्निंग प्रोग्राम शुरू करने के मामले में सबसे प्रभावशाली साबित हो रही है। बताया गया है कि दुनिया के करीब एक सौ नब्बे देश और लगभग तीन करोड़ बच्चे इसके द्वारा संचालित ऑन लाइन लर्निंग का लाभ उठा रहे हैं। अब तक गणित, विज्ञान, अंग्रेजी जैसे विषयों को ऑन लाइन पढ़ाती आ रही इस एकेडमी ने कुछ समय पूर्व हिंदी भाषा में भी ऑन लाइन प्रोग्राम शुरू किया है। इसके ऑन लाइन लर्निंग प्रोग्राम के लिए किसी भी तरह की सदस्यता लेने की जरूरत नहीं पड़ती। कोई भी इंटरनेट उपभोक्ता इस वेबसाइट से विश्वस्तरीय शिक्षा हासिल कर सकता है। अब छात्रों को ट्यूटर के पास जाने की जरूरत नहीं है। गणित, चिकित्सा विज्ञान या प्रबंधन हर विषय की पूर्ण जानकारी देते विडियो इंटरनेट पर उपलब्ध हैं। इसमें खान एकेडमी अपने ट्यूटोरियल विडियो के लिए पूरी दुनिया में प्रसिद्ध है। इस एकेडमी की शुरुआत 2006 में हुई थी। तब से अब तक लाखों लोग इसका फायदा

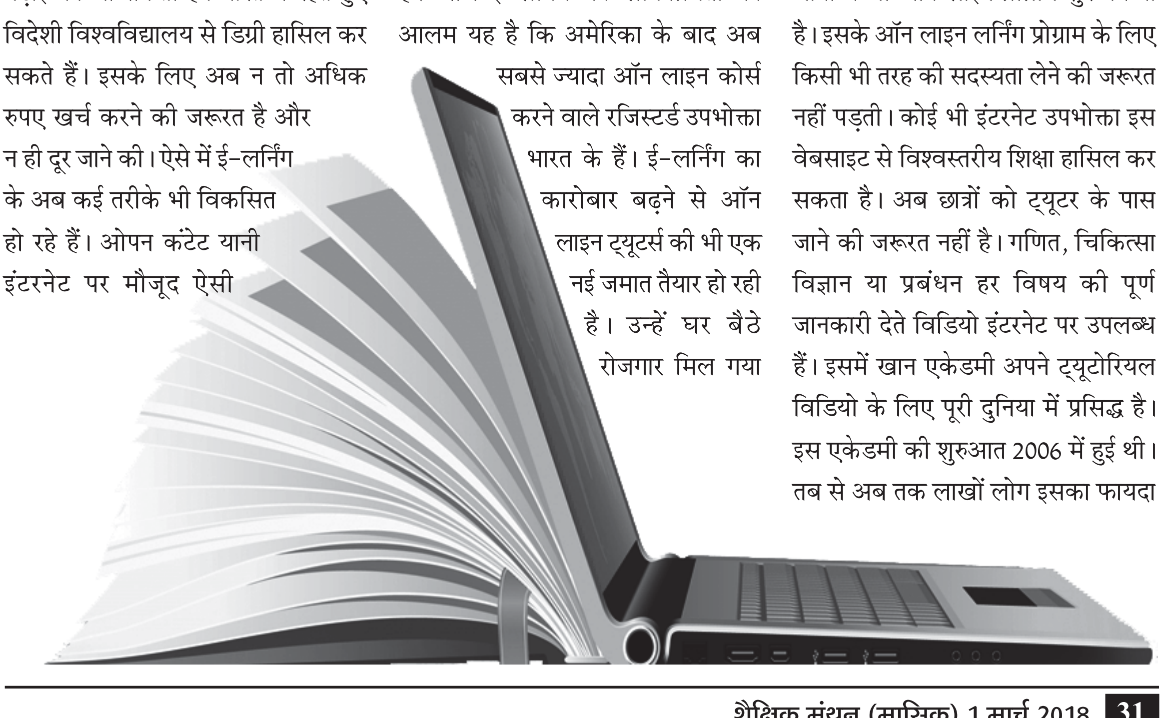

उठा चुके हैं। इसके अलावा 'लर्न 360' वेबसाइट भी ऑन लाइन एजुकेशन के लिए काफी फायदेमंद साबित हो रही है। यहाँ पहली से बारहवीं कक्षा तक के छात्रों के लिए काफी विडियो और सामग्री उपलब्ध है। वहीं 'एनपीटीइएल' वेबसाइट इंजीनियरिंग के छात्रों के लिए इसलिए खास है, क्योंकि यह घर बैठे लेक्चर क्लास में शामिल होने का अवसर मुहैया कराती है। साथ ही कुछ गणित को आसान बनाती साइटें भी मौजूद हैं। इनमें 'मैथ्य प्ले ग्राउंड डॉट कॉम' वेबसाइट के विडियो गणित को खेल-खेल में सिखाते हैं। इसके अलावा एडेक्स के मोबाइल ऐप की मदद से छात्र कोई भी कोर्स डाउनलोड करके इंटरनेट के बिना भी जब चाहें और जहाँ चाहें उन्हें पढ़ सकते हैं। निजीकरण के युग ने शिक्षा प्रणाली को भी प्रभावित किया है। शिक्षा के क्षेत्र में जो क्रांति आई है उसका श्रेय इंटरनेट को दिया जाना चाहिए। यह इंटरनेट का ही कमाल है कि आज पूरी दुनिया एक क्लिक के साथ हमारे सामने होती है और यह संभव हो पाया है ई-लर्निंग के कारण। आने वाले समय में भी एजुकेशन सिस्टम में तेजी से बदलाव होगा। इसकी वजह है शिक्षा के क्षेत्र में डिजिटलीकरण का बढ़ता दखल। इससे नौकरियों में टेक्नो फ्रेंडली लोगों को महत्त्व मिलेगा और जो लोग स्कूल-कॉलेज जाने में असमर्थ हैं, उन्हें घर बैठे ऑन लाइन डिग्री और सर्टिफिकेट मुहैया होंगे। इसकी शुरुआत हो चुकी है और इंजीनियरिंग कॉलेजों के साथ ही अन्य शिक्षण संस्थानों में भी प्रेक्टिकल आधारित शिक्षण पर ध्यान दिया जाने लगा है। वहीं कुछ मेडिकल कॉलेजों में भी ई-शिक्षा और ई-मेडिकल के तहत बच्चों को पढ़ाने और मरीजों को ऑन लाइन इलाज देने की शुरुआत की गई है।

महँगी शिक्षा के दौर में

आज जहाँ शिक्षा का बाजारीकरण हो चुका है। शिक्षा महँगी हो चुकी है। गरीबों के पास उचित शिक्षा प्राप्त करने के लिए धन उपलब्ध नहीं है, तो वहीं जो संपन्न हैं उनके पास समय का अभाव है। ऐसे में ऑन लाइन शिक्षा व्यवस्था एक बेहतर विकल्प के तौर पर उभरी है। पिछले वर्ष देश के गरीब और स्कूल न जा सकने वाले बच्चों के लिए सरकार की ओर से प्रभावी कदम उठाते हुए ई-शिक्षा व्यवस्था की 'स्वयं डॉट जीओवी डॉट इन' वेब पोर्टल की शुरुआत की गई है। इससे बच्चे ऑन लाइन शिक्षा पा सकेंगे और उन्हें किसी भी तरह का शुल्क नहीं देना होगा। इस पोर्टल की खासियत यह है कि इससे छात्र मैनेजमेंट, इंजीनियरिंग सहित तमाम पाठ्यक्रमों की पढ़ाई घर बैठे कर सकेंगे। वहीं इससे छात्रों को घर बैठे ही सर्टिफिकेट और डिग्री भी हासिल होंगे, जो किसी भी विश्वविद्यालय में मान्य होंगे। ऑन लाइन एजुकेशन के प्रति लोगों का बढ़ता उत्साह देख कर कहा जा सकता है कि भारत में इसका भविष्य उज्ज्वल है। यही वजह है कि अब अधिकतर शिक्षण संस्थान इस व्यवस्था को अपना रहे हैं। पढ़ाई का बढ़ता खर्च और किसी भी प्रोफेशनल कोर्स की डिग्री हासिल करने के लिए कॉलेजों का चुनाव, प्रवेश परीक्षा और फिर एक मुश्त मोटी फीस चुकाना युवाओं की बढ़ती संख्या के लिए काफी मुश्किल साबित हो रहा है। भारत में महज बारह प्रतिशत छात्रों को विश्वविद्यालय में दाखिला मिलता है। ऐसे में ऑन लाइन लर्निंग कराने वाली कंपनियों के लिए भारत बहुत बड़ा बाजार है। इनमें अमेरिका की कोर्सेरा कंपनी इस क्षेत्र की सबसे अग्रणी कंपनी है। यह करीब एक सौ चालीस विश्वविद्यालयों से मुफ्त पढ़ाई करवाती है और करीब 1.70 करोड़ लोग इससे जुड़े हुए हैं। वहीं भारत में करीब तेरह लाख छात्र कोर्सेरा से पढ़ाई कर रहे हैं। ऐसे में ऑनलाइन लर्निंग को उच्च शिक्षा के सुलभ पटल के तौर पर देखा जा रहा है। एक अनुमान के मुताबिक पिछले वर्ष ई-लर्निंग का बाजार दो सौ पचपन अरब डॉलर होने का अनुमान लगाया गया था। वहीं एक सर्वे के मुताबिक दुनिया के करीब 77.8 प्रतिशत लोगों ने ऑन लाइन कोर्स करने पर हामी भरी है। मौजूदा समय में ऑन लाइन शिक्षा दो प्रकार से दी जाती है। इसमें से एक है क्रेडिट कोर्स और दूसरा प्रोफेशनल ट्रेनिंग और सर्टिफिकेशन की तैयारी से संबंधित। इन पाठ्यक्रमों में छात्रों का

पंजीकरण कर ऑन लाइन माध्यम से उनकी क्लास ली जाती है। दुनिया के कई प्रसिद्ध विश्वविद्यालय इस तरह के कोर्स संचालित कर रहे हैं। इनमें एमआइटी का ओपन कोर्स वेयर और हार्वर्ड ऑन लाइन लर्निंग शामिल हैं। विदेशी भाषाओं, अकाउंटिंग और नर्सिंग की पढ़ाई के लिए ऑन लाइन लर्निंग प्रोग्राम अधिक विख्यात हैं।

ऐसे ऑन लाइन लर्निंग प्लेटफार्मों की कोशिश है कि युवाओं की रोजगार की जरूरत पूरी हो। इसलिए इसी हिसाब से पाठ्यक्रम भी तैयार किए जा रहे हैं। वहीं जी20 देशों ने 2030 तक जो लक्ष्य निर्धारित किए हैं उनमें भारत का उद्देश्य है कि देश की शिक्षा व्यवस्था को इस तरह तैयार किया जाए जहाँ डिजिटल साक्षरता पर ध्यान देते हुए स्कूली शिक्षा के दौरान ही कंप्यूटर, स्मार्टफोन, स्मार्ट बोर्ड और विडियो कॉंफ्रेंसिंग की जानकारी से अवगत करा दिया जाए। आज तकनीक ने जहाँ दुनिया की हमारे सामने लाकर रख दिया है, तो वहीं एक-दूसरे को समझने की जिज्ञासा भी लोगों में बढ़ी है। वे एक-दूसरे को समझना चाहते हैं। ऐसे में उस देश की भाषा सीखना सबसे जरूरी है। भारत भी तेजी से विकसित होता देश है। इसके प्रति भी लोगों की जिज्ञासा तेजी से बढ़ी है। ऐसे में अब विदेशी भी अब हिंदी भाषा सीखना चाहते हैं। चीन, अमेरिका सहित कई अन्य देशों के लोगों की हिंदी सीखने में रुचि बढ़ रही है। ऐसे में दुनिया भर में हिंदी पढ़ाने वालों की माँग लगातार बढ़ रही है।

पढ़ाई को बनाया आसान

इंटरनेट क्रांति ने ऑन लाइन एजुकेशन को घर-घर तक पहुँचा कर पढ़ना आसान बना दिया है। फिर चाहे स्कूल के आधारभूत पाठ्यक्रम हो या सीए, एमबीए, आइटी जैसे प्रोफेशनल कोर्सेज। वहीं इसके

अलावा भी अब गरमी की छुट्टियों में सीखे जाने वाले डांस, म्यूजिक जैसे पाठ्यक्रम भी ई-लर्निंग के जरिए घर बैठे सीखना आसान हो रहे हैं, तो अब एक क्लिक करते ही खाना बनाना सीखना हो, गीत-संगीत का आनंद लेना हो या इसको समझना हो यहाँ तक कि सिलाई, कढ़ाई जैसे काम सीखने के अवसर भी अब ऑनलाइन मुहैया हैं। मार्केट में ऐसे पोर्टलों की तादाद बढ़ती जा रही है जो जेईई, एआइपीएमटी, बैंकिंग जैसे इंट्रेंस एग्जाम की तैयारी घर बैठे कराते हैं। वहीं छात्रों की सहूलियत और इस ओर उनके झुकाव को देखते हुए अब यूनिवर्सिटीज भी अब मैसिव ओपन ऑनलाइन कोर्स का चलन बढ़ रहा है। इन कोर्सेज की मदद से दूर बैठे लोग भी अब सीखने-पढ़ने लगे हैं। इससे जहाँ छात्रों को नए अवसर मिल रहे हैं, वहीं पेशेवरों को भी अध्ययन का मौका मिल रहा है। ऑन लाइन सीखे जाने वाले इन कोर्सेज को दो श्रेणियों में बाँटा जा सकता है- एक बड़े ओपन ऑन लाइन कोर्स और छोटे प्राइवेट ऑन लाइन कोर्स। मैसिव ओपन ऑन लाइन कोर्स विश्वविद्यालय स्तर के ऑन लाइन कोर्स हैं। इनके जरिए आम लोग पढ़ाई कर सकते हैं। वेब के जरिए चलाए जाने वाले इन पाठ्यक्रमों में वेब लेक्चर, ऑन लाइन मेटीरियल की सुविधा मिलती है। हालांकि इसमें भागीदारों की संख्या अधिक होने के कारण पढ़ने वाला जिस व्यक्तिगत ध्यान दिए जाने की अपेक्षा करता है वह इसमें नहीं मिल पाता। इसके अलावा स्मॉल ऑन लाइन प्राइवेट कोर्स भी चलाए जा रहे हैं। विशेष ऑन लाइन प्रशिक्षण पाने का यह एक व्यापक जरिया कहा जा सकता है, क्योंकि इसमें पेशेवरों को प्रशिक्षण के दौरान जिस विशेष ध्यान की जरूरत होती है वह उन्हें मिलता है। वहीं इससे पारंपरिक लर्निंग तरीकों से होने वाले खर्च की तुलना में कहीं कम व्यय होता है और समय की भी बचत होती है। हालांकि इस ऑन लाइन क्लासेज के लिए एक खास जगह की जरूरत होती है। इस प्रशिक्षण कार्यक्रम के लिए प्रतिभागियों के पास मीटिंग के लिए एक बड़ा कमरा, शैक्षणिक संसाधन और दूसरे डिजिटल टूल्स का होना जरूरी है। ❑

(साभार - जनसत्ता)

उपनिवेश-दर-उपनिवेश

❑ रमेश दवे

शिक्षा हो या साहित्य, सभी क्षेत्रों में लोकतंत्र की उस संस्कृति का अभाव है, जो हमारे संवेदनतंत्र को जाति, धर्म, वर्ग और विचारधारा की कैद से मुक्त करे। शिक्षा का स्तर अगर प्राथमिक से विश्वविद्यालय तक गिरा है, तो उसके पीछे शिक्षकों-प्राध्यापकों का अपने कर्म और कर्तव्य के प्रति वफादार और ईमानदार न होना है।

आज का भारत खुद भारत का उपनिवेश है! क्या हमारी शिक्षा इसी भारत-उपनिवेश का अंग है! अगर शिक्षा का स्वरूप उपनिवेशवादी है तो फिर यह प्रश्न अन्य संस्थाओं के बारे में क्यों नहीं किया जाता? क्या पुलिस का रूप और कर्म लगभग वैसा नहीं, जैसा अंग्रेजी हुकूमत में था? क्या अदालतें भी उसी उपनिवेश की बनाई संहिताओं के कानून से नहीं चल रहीं? क्या हमारे दफ्तर, हमारे समस्त कर विभाग, यहाँ तक कि संसदीय प्रणाली, उसी उपनिवेशवाद की देन नहीं है? फर्क है तो सिर्फ इतना कि पहले अंग्रेजी उपनिवेश था, और अब भारतीय उपनिवेश! इस भारतीय उपनिवेश की उच्च स्तरीय भाषा वही अंग्रेजी है, जो पहले भी थी। उच्चतम न्यायालय हो, कर-विभाग हो, केंद्रीय संस्थान हो, उच्च तकनीकी और चिकित्सा शिक्षा हो, कानून की शिक्षा हो, यहाँ तक कि अनेक संसदीय बहसें हों, अगर ये सब अंग्रेजी भाषा के उपनिवेश से लदे हैं, तो फिर क्या यह नहीं कहा जा सकता कि भारत खुद भारत का ही एक उपनिवेश है?

प्रश्न अब यह है कि आखिर क्या खराबी है हमारी भाषाओं में, उनमें रचे गए साहित्य, हमारी शिक्षा-प्रणाली में, जो हम किसी भी क्षेत्र में विश्वस्तर के नहीं माने जाते? हमारी शिक्षा हो या साहित्य, शिक्षक हों या साहित्यकार, सभी को स्वयं हमने इतनी हिकारत से देखा कि उनमें हीनता भाव, आत्म-विश्वासहीनता समा गई। जब हमारा दिमाग ही एक प्रकार का उपनिवेशवादी संस्करण है, तो हम स्वयं से भी स्वतंत्र कहाँ हुए? भारतीय बौद्धिक का मन या तो उपनिवेशवादी है या अधिकार-ग्रस्त, प्रभाव-प्रमत्त सामंतवादी। जो लोग समाजवादी, मार्क्सवादी, प्रगतिवादी आदि वादों का तमगा गले में डाल कर जन-शिक्षा और लोक-साहित्य या यथार्थवादी, कलावादी खेमों के खंभे पकड़ कर खड़े हैं, वे अंदर से घोर सामंत हैं, अनुदार हैं और ऐसा लगता है जैसे वे ही साहित्य के तानाशाह हैं, जो अपने समर्थकों को छोड़ कर

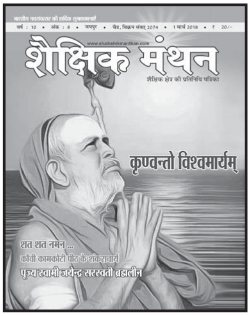

आज का भारत खुद भारत का उपनिवेश है! क्या हमारी शिक्षा इसी भारत-उपनिवेश का अंग है! अगर शिक्षा का स्वरूप उपनिवेशवादी है तो फिर यह प्रश्न अन्य संस्थाओं के बारे में क्यों नहीं किया जाता? क्या पुलिस का रूप और कर्म लगभग वैसा नहीं, जैसा अंग्रेजी हुकूमत में था? क्या अदालतें भी उसी उपनिवेश की बनाई संहिताओं के कानून से नहीं चल रहीं? क्या हमारे दफ्तर, हमारे समस्त कर विभाग, यहाँ तक कि संसदीय प्रणाली, उसी उपनिवेशवाद की देन नहीं है? फर्क है तो सिर्फ इतना कि पहले अंग्रेजी उपनिवेश था, और अब भारतीय उपनिवेश! इस भारतीय उपनिवेश की उच्च स्तरीय भाषा वही अंग्रेजी है, जो पहले भी थी।

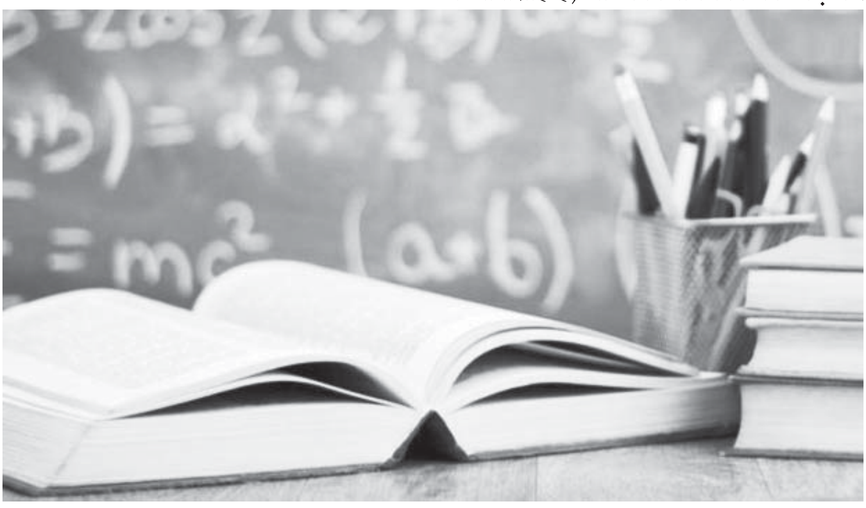

बाकी के लिए सदा किसी यंत्रणा-शिविर की कामना करते रहते हैं। चूंकि हमारे साहित्यकार सरकारी या प्राइवेट नौकरी करते हैं, तो उनका अफसरवाद, नौकरवाद उन्हें मुक्त होने ही नहीं देता। लगता है जैसे वे दफ्तरी फाइलों के अंदर भटक-भटक अपनी साहित्यिक उदारता ही खो बैठे हैं।

जहाँ तक शिक्षा का प्रश्न है, यहाँ हर स्तर पर विभाग-वाद और शिक्षकों के बीच पदों का वर्गवाद है। विभाग ही तो सबसे बड़ा उपनिवेश है, जो कुर्सी पर बैठ कर तरह-तरह के भय पैदा करता रहता है। शिक्षा की गर्दन ईस्ट इंडिया कंपनी के कार्यकाल से आज तक तरह-तरह के पदों की कुर्सियों में फँसी हुई है। शिक्षा को कुर्सी मुक्त करने के प्रयास स्वतंत्र भारत में राधाकृष्णन आयोग से लेकर आज तक होते रहे, मगर कुर्सीधारी आयोगों ने शिक्षा को कुर्सी-मुक्त नहीं किया। अब तो यह भी मान्यता फिर घर करने लगी है कि तथाकथित कुर्सी के उपनिवेश से मुक्त करने के बावजूद, पाठ्यक्रमों में बदलावों के बावजूद, देश भर में स्कूलों, कॉलेजों, विश्वविद्यालयों, संस्थानों का जाल बिछा देने के बावजूद, शिक्षा का रूप, उसकी गंध, उसकी गति, उसकी प्रगति सबमें ऐसा परिवर्तन क्यों नहीं हुआ कि जिससे यह लगता कि भारतीय शिक्षा एक महान लोकतंत्र के महान चिंतन और चिंतकों की शिक्षा है?

हम कितने भी उदाहरण अमेरिका के नासा या सिलिकॉन वैली के दें, विदेश में भारतीय प्रतिभाओं के वर्चस्व की गौरव गाथा गाएँ, सच तो यह है कि जिस देश में करोड़ों छात्र-छात्राएँ हों, उस देश में एक करोड़ प्रतिभाएँ भी ऐसी क्यों नहीं, जो अपने देश में रह कर देश के उत्थान में योगदान दें? कहा जा सकता है कि यहाँ उच्च नौकरियों का अभाव है, कॅरियर बनाने के मौके कम हैं, वेतनमान प्रतिभा के अनुरूप नहीं हैं, कामकाज में सरकारी और नौकरीशाही हस्तक्षेप या अड़ंगे अधिक हैं, सुविधाओं और साधनों का अभाव है, ऐसे में यहाँ रह कर क्या किया जाए? 'एज्यूकेशन इन डिफिकल्ट सिचुएशंस' को अपना कर कई देशों ने चुनौतियों और कठिन परिस्थितियों से संघर्ष किया है, तभी जाकर कई गरीब, विकासमान और पिछड़े देश उन्नत हुए हैं, जिसके उदाहरण पूर्व सोवियत रूस, पूर्वी यूरोप के देश, चीन, क्यूबा, कोरिया, वियतनाम आदि रहे हैं। क्या वैसा समर्पण, वैसी शैक्षिक राष्ट्रीयता हमारे देश में पैदा हुई? हम शिक्षा से पद, प्रभाव और अधिकार तो चाहते हैं, मगर कर्तव्य, सेवा और कर्म नहीं चाहते। क्या यह हमारी उपनिवेशवादी सोच नहीं है?

कहा जाता है कि साहित्य सबके हित की संभावना रचता है। साहित्य हमें संवेदनशील, उदार, मानवीय और सृजनशील बनाता है। हम साहित्य में विचार रचते हैं, सौंदर्य, यथार्थ, कल्पना के अनेक रंग रचते हैं और भाषा को उसके नाना रूपों में प्रकट करते हैं। साहित्य अगर विराट संज्ञा है, तो उसके साथ साहित्यकार के ओछेपन, कट्टरपन और संकीर्णता के विशेषण क्यों जुड़े हुए हैं? उसका चिंतन और सृजन अगर सार्वभौम है, तो वह तरह-तरह के वादों के गली-कूचों में क्यों भटकता रहता है? जो वामपंथी है वह भी मनुष्य है, जो दक्षिण पंथी है वह भी मनुष्य है। अल्पसंख्यक हो, दलित हो, पिछड़ा हो या अगड़ा, सभी तो मनुष्य हैं। अगर समाज में शोषण है, असमानता, असंयम, असहिष्णुता और अन्याय-उत्पीड़न है, तो उसके विरोध में राजनीतिक, सामाजिक या लोकमंच है। साहित्यकार का काम वामपंथ या दक्षिण पंथ से राजनीतिक वफादारियाँ पैदा करना नहीं है। वे बजाय राजनीतिक नारेबाजी का साहित्य रचने के, किसी को संस्कृतिवादी और किसी को संस्कृति-विरोधी कहने का फतवा देने के, अगर श्रेष्ठ रचनाएँ करें, समाज को भाषा, विचार, अध्ययन और अच्छे पाठक बनने के आयोजन, आंदोलन करें, पढ़े-लिखे वर्ग में छात्र-छात्रों से लेकर आम नागरिक तक अपना साहित्य पहुँचाएँ और उन्हें पढ़ने के प्रति आकर्षित करें तो समाज अपने आप संवेदनशील बनेगा, सहिष्णु, भाषा और साहित्य का प्रेमी बनेगा।

साहित्यकार को पार्टीबाजी और सरकारी चापलूसी से ऊपर उठना होगा। पुरस्कारों-सम्मानों की प्रायोजित प्रतियोगिताओं से बाहर आना होगा। जब सम्मान या पुरस्कार लॉबिंग से हासिल होते हैं, तो वह वफादारी का ईनाम हुआ, प्रतिभा को सम्मान कहाँ? ऐसा क्यों होता है कि जिस विचारधारा की सरकार होती है, उसके कार्यकाल में केवल उसकी विचारधारा के साहित्यकार ही पुरस्कृत होते हैं, चाहे वे कितने भी प्रतिभाहीन, स्तरहीन क्यों न हों। क्या ऐसा करना उसी मनोवृत्ति का परिचायक नहीं है, जो उपनिवेशकाल में थी जब राजा, महाराजा, सेठ-साहूकारों को रायसाहब या नाइटहुड की पदवी दी जाती थी। हमें पुरस्कारों के इस उपनिवेशवाद से भी मुक्त होना होगा और श्रेष्ठता का वह स्तर कायम करना होगा कि आप पुरस्कार तक दौड़ कर न जाएँ, बल्कि पुरस्कार आप तक नम्रता से चल कर आए। शिक्षा और साहित्य अगर अपने उपनिवेशवादी सोच और कर्म से मुक्त हुए तो भारत एक सच्चा लोकतंत्र लगेगा, वरना ऐसा लगेगा जैसे भारत स्वयं अपना ही उपनिवेश है। ❑

अनुपयोगी होती जा रहीं पीएचडी डिग्रियाँ

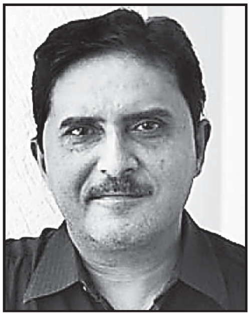

दरअसल भारत का उच्च शिक्षा तंत्र हर स्तर पर चरमराया हुआ है, स्नातक से अधिस्नातक व व्यावसायिक पाठ्यक्रमों तक, सभी पाठ्यक्रमों में एक जैसे ही हालात हैं। विड़म्बना यह है कि जिसके पास जो डिग्री है, वह उस डिग्री से संबंधित नौकरी के ही लायक नहीं है। देश में ऐसे हजारों स्नातक हैं जो बेरोजगार ही रह जाते हैं। अनुपयोगी पीएचडी डिग्रियाँ तो भारतीय उच्च शिक्षा तंत्र पर ही सवालिया निशान लगाती हैं। यह सही है कि पहले कुछ सुधार किए गए थे लेकिन वे पीएचडी को मुश्किल बनाने के लिए कुछ खास नहीं थे।

❑ **पी. पुष्कर**

पिछले दिनों तमिलनाडु लोक सेवा आयोग की 9500 पदों की मंत्रालयिक संवर्ग की भर्ती परीक्षा आयोजित की। करीब 20 लाख आवेदकों में से 992 पीएचडी डिग्रीधारी थे व 23 हजार एम.फिल डिग्री लिये हुए थे। ऐसा पहली बार नहीं हुआ है, जब बड़ी संख्या में पीएचडी डिग्रीधारी क्लर्क जैसे छोटे पद के लिए परीक्षा में बैठे हों। दो साल पहले ही सितम्बर 2015 में जब उत्तर प्रदेश सरकार ने सचिवालय में चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियों के लिए आवेदन आमंत्रित किए थे तो 368 पदों के लिए 23.25 लाख आवेदन आए और उनमें से 255 अभ्यर्थी पीएचडी डिग्रीधारी थे। इस पद के लिए अनिवार्य न्यूनतम योग्यता थी पाँचवीं कक्षा पास होना व साइकिल चलाना आता हो। आखिर स्नातकोत्तर के बाद उत्कृष्ठ शोध कर पीएचडी जैसी डिग्री हासिल करने वाले लोग लिपिक या उससे छोटे पदों के लिए आवेदन क्यों करते हैं? संभवत: इसकी तीन वजह हो सकती हैं। पहली, बहुत ही साधारण सी बात है कि भारतीय विश्वविद्यालय कई अयोग्य लोगों को पीएचडी डिग्री बाँट देते हैं। फिर, ये ही लोग नाम भर के लिए पीएचडी लिये किसी कॉलेज, यूनिवर्सिटी और शोध संस्थानों में अध्यापन या शोध संबंधी सम्माननीय नौकरी के लिए आवेदन करने के बजाय हर तरह के छोटे-मोटे पद के लिए आवेदन कर देते हैं।

कुछ लोग यह मान सकते हैं कि केवल उत्तर प्रदेश और बिहार जैसे पिछड़े राज्यों के विश्वविद्यालयों द्वारा दी जाने वाली पीएचडी डिग्रीधारियों का यह हाल है परन्तु जब तमिलनाडु जैसे राज्यों में भी यही स्थिति सामने आती है तो लगता है कि वहां भी यही हालात हैं। दूसरी वजह हो सकती है कि हमारे कॉलेज और विश्वविद्यालयों में नौकरियों का अभाव है। यह काफी हद तक सच है। अखबारों में सामान्यत: दिखाया जाता है कि हमारे श्रेष्ठ शिक्षण संस्थानों में 30-40 प्रतिशत सीटों पर अध्यापकों के पद रिक्त होते हैं। सरकारी विश्वविद्यालयों व निजी कॉलेजों में इससे अधिक संख्या में अध्यापकों के पद रिक्त होते हैं। परन्तु सच्चाई यह है कि आवेदन कम पदों के लिए आमंत्रित किए जाते हैं और नई भर्तियाँ कर ली जाती हैं। वित्तीय संकट से जूझ रहे सरकारी विश्वविद्यालय जहाँ जरूरत से कम पदों पर नए शिक्षकों की भर्ती कर रहे हैं, वहीं प्राइवेट संस्थान पूर्णकालिक शिक्षकों के बजाय अंशकालिक अध्यापकों को ही नौकरी दे रहे हैं क्योंकि उन्हें अपेक्षाकृत कम वेतन देना होता है। तीसरा कारण यह हो सकता है कि पीएचडी डिग्रीधारी युवा ऐसे पदों के लिए इसलिए आवेदन करते हैं क्योंकि उनकी योग्यता के लायक नौकरियाँ उपलब्ध ही नहीं हैं। साथ ही कुछ मामलों में जरूरत से अधिक योग्य पीएचडी डिग्रीधारी उपलब्ध पदों के योग्य नहीं पाए जाते। इसीलिए वे जो भी अवसर उपलब्ध हैं, वे उनके लिए ही आवेदन कर बैठते हैं।

ये तीनों कारण यह समझने के लिए काफी हैं

कि पीएचडीधारी सैंकड़ों आवेदक लिपिक या उससे कम दर्जे के पदों के लिए क्यों आवेदन कर देते हैं। लेकिन, चिंता का विषय तो यह है कि निम्न स्तर की पीएचडी डिग्रियाँ भारतीय शिक्षा व्यवस्था के लिए कलंक साबित हो रही हैं। भारतीय विश्वविद्यालयों द्वारा बाँटी जा रही पीएचडी डिग्रियों का स्तर इतना नीचा है कि किसी भी कॉलेज या विश्वविद्यालय में प्रारंभिक स्तर पर शिक्षकों के रिक्त पद भरने के लिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग मानकों के अनुसार नेशनल एलिजिबिलिटी टेस्ट (नेट) या स्टेट लेवल एलिजिबिलिटी टेस्ट (स्लेट) पास करना अनिवार्य है भले ही पीएचडी कर लिया हो। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि पीएचडी को भावी शिक्षकों की अनिवार्य योग्यता का संपूर्ण मापदंड नहीं माना जा सकता। इसका कारण है कि अच्छी रेटिंग वाले विश्वविद्यालय में पीएचडी करने वालों को उतना सा कष्ट भी नहीं होता जितना दुनिया के किसी भी अन्य विश्वविद्यालय से स्नातक करने वाले विद्यार्थियों को होता है। दरअसल भारत का उच्च शिक्षा तंत्र हर स्तर पर चरमराया हुआ है, स्नातक से अधिस्नातक व व्यावसायिक पाठ्यक्रमों तक, सभी पाठ्यक्रमों में एक जैसे ही हालात हैं।

विडम्बना यह है कि जिसके पास जो डिग्री है, वह उस डिग्री से संबंधित नौकरी के ही लायक नहीं है। देश में ऐसे हजारों स्नातक हैं जो बेरोजगार ही रह जाते हैं। अनुपयोगी पीएचडी डिग्रियाँ तो भारतीय उच्च शिक्षा तंत्र पर ही सवालिया निशान लगाती हैं। यह सही है कि पहले कुछ सुधार किए गए थे लेकिन वे पीएचडी को मुश्किल बनाने के लिए कुछ खास नहीं थे। उदाहरण के लिए कोर्सवर्क यानी पाठ्यक्रम संबंधित कार्य लेकिन जितने भी विश्वविद्यालयों ने अपने पीएचडी विद्यार्थियों के लिए कोर्सवर्क लागू किया वह दिखावा बन कर रह गया। ना तो पाठ्यक्रमों की सामग्री चुनौतीपूर्ण है और ना ही उनका मूल्यांकन बल्कि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के नियमानुसार कोर्सवर्क विद्यार्थियों को नेट या स्लैट पास करने की अनिवार्यता से बचाने में सहायक है। जब सरकार पीएचडी करवाने वाले बहुत कम संस्थानों में ही समुचित नियमन प्रक्रिया लागू नहीं कर पा रही है तो कैसे उम्मीद करें कि वह राज्य या राष्ट्रीय स्तर पर आवश्यक उच्च शिक्षा सुधार लागू कर सकती है? ❑

(साभार– राजस्थान पत्रिका)

अ.भा. राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ राष्ट्रीय कार्यकारिणी बैठक अयोध्या में सम्पन्न

अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ की राष्ट्रीय कार्यसमिति प्राथमिक संवर्ग एवं राष्ट्रीय कार्यकारिणी की बैठक दिनांक 2 से 4 फरवरी, 2018 को अयोध्या (उत्तर प्रदेश) में सम्पन्न हुई। जिसमें 94 सदस्यों एवं पदाधिकारियों ने भाग लिया।

2 फरवरी, 2018 को प्राथमिक संवर्ग कार्यसमिति की बैठक में प्राथमिक शिक्षा एवं शिक्षकों की समस्याओं पर विचार व्यक्त किया गया एवं उनके समाधान के सुझाव दिये गये। राजकीय विद्यालयों में नामांकन में कमी आने पर चिन्ता व्यक्त की गई और सुझाव आये कि 3 वर्ष या अधिक उम्र के बालक, बालिकाओं को विद्यालय में प्रवेश लेने की सुविधा सरकार प्रदान करे। विद्यालयों के विलय करने पर चिन्ता व्यक्त की तथा गैर शैक्षिक कार्यों से शिक्षकों को पूर्ण रूप से मुक्त किये जाने की माँग को दोहराया। आदर्श विद्यालयों की अवधारणा को स्पष्ट किये जाने पर जोर दिया।

3 एवं 4 फरवरी को सम्पन्न राष्ट्रीय कार्यकारिणी की बैठक में 17 राज्यों से आये राज्य स्तरीय संगठनों एवं विश्वविद्यालय संगठनों से प्राप्त कार्यवृत्त के अनुसार 838 इकाइयों द्वारा 264 जिलों में कर्तव्य बोध कार्यक्रम सम्पन्न हुए जिसमें 76 हजार से अधिक शिक्षक, शिक्षार्थी एवं समाज के अनेक गणमान्य व्यक्तियों ने सहभाग किया। शाश्वत जीवन मूल्य अभियान के अन्तर्गत सम्पन्न कार्यक्रमों की जानकारी सम्बद्ध संगठनों द्वारा प्रदान की गई। विभिन्न संवर्गों की बैठक में संवर्गों की समस्याओं पर विचार किया गया एवं समाधान के लिए कदम उठाने के सुझाव प्राप्त हुए।

महासंघ के राष्ट्रीय संगठन मंत्री महेन्द्र कपूर ने आगामी कार्यक्रमों की विस्तार से जानकारी प्रदान की। विशेष रूप में एनडीएमसी कन्वेंशन सेंटर, नई दिल्ली में 24 एवं 25 फरवरी, 2018 को आयोज्य अन्तरराष्ट्रीय सम्मेलन 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के आयोजन की विस्तार से जानकारी प्रदान की एवं सभी आमंत्रित संभागियों को उसमें सम्मिलित होने का आग्रह किया। इसके साथ ही 5 एवं 6 मई, 2018 को दिल्ली में आयोज्य मीडिया कार्यशाला की भी जानकारी प्रदान की।

समारोप सत्र में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के अखिल भारतीय सम्पर्क प्रमुख माननीय अनिरुद्ध देशपाण्डे ने अपने उद्बोधन में कहा कि कार्य का आधार कार्यकर्ता होता है और संगठन ही इसके लिए प्रभावी माध्यम है। इसके लिए सामूहिक पद्धत्ति के आधार पर निर्णय व प्रक्रिया अपनाने की आवश्यकता है। हम सभी के कार्य की दिशा वही होनी चाहिए जिससे एकात्म राष्ट्र बनें और राष्ट्र के विचार की कल्पना को पूर्ण कर सकें। महासंघ के अध्यक्ष जे.पी. सिंघल ने अपने उद्बोधन में सभी राज्य स्तरीय संगठनों एवं विश्वविद्यालय संगठनों द्वारा अपनी भूमिका को ठीक प्रकार से निर्वाह करने के लिए स्वयं को प्रभावी संगठन बनाने की आवश्यकता पर बल दिया।

बचपन के बहाने

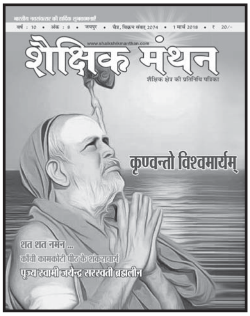

यह समझना बेहद जरूरी है कि आखिर बच्चों के साथ तमाम शिक्षक स्कूलों में मेहनत करते हैं, फिर भी बच्चों में पढ़ने-लिखने जैसे बुनियादी हुनर का विकास नहीं हो पाता। कमला मुकुंदा के अनुसार, स्कूलों में जो कुछ भी होता है वह दिमाग की तासीर के विपरीत होता है। हमारा दिमाग अर्थपूर्ण चीजों को पकड़ने में माहिर है। वह अर्थहीन चीजों के प्रति उदासीन रहता है। सच कहें तो स्कूलों को बच्चों की तासीर के मुताबिक अपना रवैया और कार्यप्रणाली बनानी होगी। वैसे एक स्कूल से आम व्यक्ति या कि अभिभावक जो अर्थ निकालते हैं वह यह कि जहाँ भवन हो, कक्षाएँ, मेज-कुर्सियाँ, कक्षा में बैठे बच्चे, मिड-डे-मील, घंटी, पीरियड, दैनिक डायरी, पाठ्यपुस्तकें, होमवर्क आदि-आदि।

❑ कालू राम शर्मा

प्रसिद्ध बाल मनोवैज्ञानिक कमला मुकुंदा अपनी पुस्तक 'वाट डिड यू आस्कड एट स्कूल टुडे' में कहती हैं कि बच्चों में गैर-जन्मजात सीखने की अपार क्षमता होती है। गैर-जन्मजात सीखने का अर्थ है पढ़ना, लिखना, प्रयोग करना आदि। तो फिर स्कूलों में बच्चे ये सब क्यों नहीं सीख पाते?

किसी बच्चे को देखता हूँ तो मुझे वह अपार संभावनाओं से लबरेज लगता है। आनुवांशिकी बताती है कि एक बच्चे की बनावट ही इस तरह की होती है कि उसमें तमाम क्षमताएँ होती हैं जो हम दुनिया के लोगों में देखते हैं। चाहे वह किसी भी जाति या धर्म का हो। अहम यह है कि बच्चे को बचपन से कैसा माहौल मिलता है। हम मानव की बात करें तो उसका दिमाग और शरीर की आनुवांशिक बनावट कुछ इस तरह की होती है कि उसे अगर उचित वातावरण मिले तो वह हर चीज सीखने का माद्दा रखता है। मामला यह है कि अकसर हम जात-पाँत की बात करते हुए इंसानों की बुद्धि व उनकी सीखने की क्षमताओं पर सवालिया निशान दागना शुरू कर देते हैं। वास्तव में जो हाशिये की पृष्ठभूमि के बच्चे होते हैं उनका न केवल शारीरिक बल्कि सोचने-समझने की तैयारी व लालन-पालन मुख्यधारा की संस्कृति से जुदा होता है। यह एक प्रमुख कारण है कि वे मुख्यधारा से कटे होते हैं। सवाल है कि आखिर हम क्यों मुख्यधारा में हर किसी को लाना चाहते हैं।

स्कूलों में न पहुँचने वाले बच्चे हााशिये पर जी रहे परिवारों से हैं। सच कहें तो स्कूल उन तक अपनी पहुँच नहीं बना पाया है। बच्चा चाहे कितनी भी कमजोर पृष्ठभूमि के परिवार में जन्म ले, वह अपने परिवेश की भाषा सीख ही लेता है। दुनिया का हर बच्चा भाषा सीखने की क्षमता के साथ जन्म लेता है। इसका अर्थ यह नहीं कि वह जन्म लेते ही भाषा सीख लेगा बल्कि वह यह क्षमता लेकर जन्मता है। इतना ही नहीं, बच्चा दुनिया की हर भाषा सीखने की क्षमता रखता है।

हर बच्चा जिज्ञासु और उत्सुकता का खजाना होता है। बच्चा शिशु अवस्था से ही दुनिया की पड़ताल शुरू कर देता है। एक आठ माह की बच्ची के लिए अपने आसपास की हर चीज निराली होती है। वह उसे छूती है, उसका स्वाद लेना चाहती है, उसकी गंध लेना चाहती है। हर बच्चे में जिज्ञासा और उत्सुकता, अवलोकन, विश्लेषण, सामान्यीकरण करने के गुण होते हैं। ये वे कौशल हैं जो विज्ञान के ज्ञान को बुनने में अग्रणी होते हैं। सवाल है कि हम बच्चों के शुरुआती स्तर पर ही इन कौशलों के विकास पर कितना जोर देते हैं। घरों में रोजमर्रा की प्रक्रियाओं में बच्चे इन कौशलों के बीच से गुजरते हैं। मसलन, एक तीन साल की बच्ची अपने आसपास किसी चिड़िया को देखती है और उसकी आवाज सुनती है। अगली बार

वह उसकी आवाज को समझ लेती है कि फलां चिड़िया आँगन में होगी। एक बच्ची चिड़िया को धूल में नहाते देख सवाल करती है कि यह धूल में क्यों नहाती है? वह यह भी देखने की कोशिश करती है कि क्या दूसरी भी धूल में नहाती है? इतना ही नहीं, वह इंसानों से भी तुलना करने लगती है? वह पूछती है कि 'तुम धूल में क्यों नहीं नहाते?'

मैंने भी शिक्षकों के साथ इस मसले पर खूब बातें की हैं। यह समझना बेहद जरूरी है कि आखिर बच्चों के साथ तमाम शिक्षक स्कूलों में मेहनत करते हैं, फिर भी बच्चों में पढ़ने-लिखने जैसे बुनियादी हुनर का विकास नहीं हो पाता। कमला मुकुंदा के अनुसार, स्कूलों में जो कुछ भी होता है वह दिमाग की तासीर के विपरीत होता है। हमारा दिमाग अर्थपूर्ण चीजों को पकड़ने में माहिर है। वह अर्थहीन चीजों के प्रति उदासीन रहता है। सच कहें तो स्कूलों को बच्चों की तासीर के मुताबिक अपना रवैया और कार्यप्रणाली बनानी होगी।

वैसे एक स्कूल से आम व्यक्ति या कि अभिभावक जो अर्थ निकालते हैं वह यह कि जहाँ भवन हो, कक्षाएँ, मेज-कुर्सियाँ, कक्षा में बैठे बच्चे, मिड-डे-मील, घंटी, पीरियड, दैनिक डायरी, पाठ्यपुस्तकें, होमवर्क आदि आदि। मगर क्या एक स्कूल इन्हीं भौतिक सुविधाओं से 'स्कूल' बन जाता है? नहीं। एक स्कूल से आशय है जहाँ सीखने-सिखाने का समृद्ध वातावरण हो। और सीखने-सिखाने का अर्थ यह कदापि नहीं कि जहाँ बच्चों को जबरन वह सब सीखने को बाध्य किया जाए जो वे नहीं चाहते या कि जहाँ बच्चों को तथाकथित सूचनाओं की घुट्टी पिलाई जा रही हो। सडबरी वैली स्कूल का वह किस्सा मुझे याद आता है जहाँ किसी भी बच्चे को यह नहीं कहा गया कि तुम पढ़ो। मगर हर बच्चा जो उस स्कूल से लौट कर गया, वह पढ़ना सीख कर ही गया। जाहिर है कि उस स्कूल ने बच्चों को पढ़ने के अवसर उपलब्ध कराए। ❑

महाराष्ट्र राज्य शिक्षक परिषद का द्विवार्षिक प्रदेश अधिवेशन मुम्बई में सम्पन्न

अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ से सम्बद्ध महाराष्ट्र राज्य शिक्षक परिषद के द्विवार्षिक प्रदेश अधिवेशन का उद्घाटन मुख्य अतिथि स्थानीय विधायक गोपाल शेट्टी द्वारा द्वीप प्रज्वलन के साथ हुआ। इस अवसर पर मुख्य अतिथि ने अपने उद्बोधन में कहा कि ''शिक्षक समाज की मुख्य धारा के ध्वज वाहक हैं, जिसके कारण समाज सदैव उनके कार्य एवं व्यवहार से प्रेरित होकर आगे बढ़ता है। इस नाते शैक्षिक महासंघ की प्रेरणा से महाराष्ट्र राज्य शिक्षक परिषद् के द्वारा आयोजित राष्ट्रीय विचार मन्थन का यह दो दिवसीय सम्मेलन सफल हो ऐसी शुभकामना करता हूँ।''

इस अवसर पर अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ के अध्यक्ष जगदीश प्रसाद सिंघल ने शैक्षिक महासंघ के ध्येय वाक्य – 'राष्ट्र के हित में शिक्षा, शिक्षा के हित में शिक्षक, शिक्षक के हित में समाज' की वैचारिक संकल्पना को स्पष्ट करते हुए केन्द्र सरकार द्वारा दिए गए सातवें वेतन आयोग के परिलाभों की संस्तुति राज्य सरकार से हूबहू लागू करने की माँग की। उन्होंने सरकार को सुझाते हुए यह भी कहा कि सरकार और कर्मचारियों का सम्बंध माँ-बेटे जैसा होता है, जिसमें माँ को बेटे की आवश्यकताओं व अपेक्षाओं को समझ के साथ पूरा करने का भाव निहित होता है। यही भाव सरकार, समाज व शिक्षकों की मनोभावना व समरसता को पुष्ट करता है।

अन्त में महाराष्ट्र राज्य परिषद मुम्बई विभाग के अध्यक्ष उल्लास वडोदकर ने मुम्बई विभाग का वृत निवेदन किया। द्वितीय सत्र में शैक्षिक महासंघ के अध्यक्ष जगदीश प्रसाद सिंघल ने अपने उद्बोधन में कहा कि ''किसी भी राष्ट्र की तस्वीर को बदलने का सामर्थ्य एक शिक्षक में निहित होता है। हम वशिष्ट, संदीपनी और चाणक्य की परम्परा के अनुगामी शिक्षक हैं, जो जीवन मूल्यों को संकल्पना के साथ समाज के सम्मुख अपना पक्ष रखते हुए आगे बढ़ते हैं।''

कार्यक्रम के मुख्य अतिथि महाराष्ट्र सरकार के शिक्षा मंत्री विनोद तावड़े ने स्वयं को एक शिक्षक की भूमिका में रखते हुए सभागार में उपस्थित विधानसभा व विधान मण्डल के सदस्यों की साक्षी में शिक्षकों द्वारा रखी गयी समस्याओं के सन्दर्भ में आश्वासन दिया कि वह अपनी तरफ से इनका निदान करने का प्रयत्न सरकार के समक्ष करेंगे।

तृतीय सत्र में वेणुनाथ कडु की अध्यक्षता व नागपुर विधानमण्डल के सदस्य नागो गाणार की उपस्थिति में नौ प्रस्ताव पारित किए। सभी के अनुमोदन के साथ सत्र का समापन हुआ।

अधिवेशन के दूसरे दिन चतुर्थ सत्र में मुख्य वक्ता पूर्व विधानमण्डल सदस्य भगवान राव सालुंखे ने शिक्षा क्षेत्र की वर्तमान स्थिति पर अप्रसन्नता जाहिर करते हुए कहा कि वर्तमान सरकार के दोहरे मानदण्डों ने गरीब और अमीर के बीच सरकारी और निजी क्षेत्रों के शिक्षण संस्थानों के रूप में बहुत बड़ी खाई खोद दी गयी है, जिसको समय रहते हुए नहीं पाटा गया तो शिक्षा के मूलभूत अधिकार की धज्जियाँ तो उड़ ही जायेंगी, देश भी वर्ग भेद के नए चौराहे पर आ खड़े होगा जो भारतीय सम्प्रभुता के लिए हितकारी नहीं है।

समापन सत्र में मुख्य वक्ता अ.भा. राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ के राष्ट्रीय संगठन मंत्री श्री महेन्द्र कपूर ने उपस्थित शिक्षक समुदाय को स्वामी विवेकानन्द के मार्ग पर चलने का आग्रह करते हुए कहा कि हमें शैक्षिक महासंघ के मार्गदर्शन में शिक्षा की संकल्पना को धरातल पर लाने का संकल्प करना पड़ेगा तभी जाकर शिक्षक परिवर्तन के प्रमुख बन पायेंगे। जिस प्रकार एक दीप से दूसरे दीप को प्रज्वलित कर अंधकार का नाश किया जाता है उसी प्रकार एक-एक शिक्षक की चेतना से सम्पूर्ण राष्ट्र में व्याप्त विसंगतियों का परित्राण किया जा सकता है। अध्यक्षता प्रदेशाध्यक्ष वेणुनाथ कडु ने की। आभार प्रदर्शन व राष्ट्र वन्दना के साथ अधिवेशन का समापन हुआ।

शिक्षक भारतीय संस्कृति को प्रतिष्ठापित करें

(कर्नाटक राज्य के बीदर जिले की होमनाबाद तहसील के हुडकी ग्राम में जन्में शिवानंद सिंदनकेरा अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ के महामंत्री है। अनुप्रयुक्त इलेक्ट्रोनिकी में अधिस्नातक शिवानंद महाराजा राजकीय प्री यूनिवर्सिटी महाविद्यालय मैसूर में इलेक्ट्रोनिकी में वरिष्ठ व्याख्याता हैं। कर्नाटक विधान परिषद् में अधिकारी के रूप में सेवा दे चुके शिवानंद राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ में विभिन्न दायित्व निभा चुके हैं। शिक्षक संघ में जिलाध्यक्ष से कर्नाटक राज्य-अध्यक्ष पद का दायित्व निभा चुके शिवानंद सिंदनकेरा अब भारत के सबसे बड़े शिक्षक संगठन अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ के महामंत्री हैं। राष्ट्रीय चिन्तन के साथ भारत की शिशु शिक्षा से विश्वविद्यालय तक के शिक्षकों के मध्य समान रूप से लोकप्रिय शिक्षक संगठन के महत्त्वपूर्ण पद का दायित्व निभाने वाले कार्यकर्ता से वार्ता की है- शैक्षिक मंथन के सह संपादक विष्णुप्रसाद चतुर्वेदी ने। प्रस्तुत हैं वार्ता के संपादित अंश। - संपादक)

अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ के महामंत्री शिवानंद सिंदनकेरा का कहना है कि शिक्षकों को विश्व की प्राचीनतम, भारतीय संस्कृति को पुन: प्रतिष्ठापित करने का कार्य करना चाहिए। वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना पर आधारित संस्कृति से देश के साथ विश्व का लाभ होगा। नई शिक्षा नीति से बहुत आशा रखने वाले शिवानंद सिंदनकेरा शिक्षा मातृभाषा में दिए जाने के पक्षधर हैं।

1. देश के सबसे बड़े शिक्षक संगठन अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ के महामंत्री का दायित्व स्वीकार कर आप कैसा अनुभव कर रहे हैं ?

देश के सबसे बड़े शिक्षक संगठन का महामंत्री बनना बहुत ही सम्मान की बात है। मैं गौरवान्वित अनुभव कर रहा हूँ। बड़े पद के दायित्व भी अधिक होते हैं। ईश्वर

साक्षात्कार

से प्रार्थना है मैं अपने सभी दायित्व सफलतापूर्वक निभा सकूँ।

2. शिक्षक संगठन में कार्य करने का विचार आपके मन में किस कारण आया ?

मैं बचपन में ही राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ में सक्रिय हो गया था। शिक्षक बनने पर शिक्षक संगठन में कार्य करने का निर्देश हुआ तो उससे जुड़ गया। जिला व राज्य स्तर पर कार्य करने बाद अब राष्ट्रीय दायित्व मिला है।

3. शिक्षक संगठन में आते समय कर्नाटक राज्य में विभिन्न शिक्षक संगठनों की स्थिति कैसी थी ?

कुछ अधिक अच्छी नहीं थी। शिक्षक बहुत परेशान थे। समान विचार रखने वाले शिक्षकों से संपर्क कर संगठन को विस्तार दिया। यह कार्य अभी भी जारी हैं। प्रान्तीय दायित्व निभा रहे साथी सघन प्रवास कर संगठन बड़ा आकार देने के साथ-साथ आदर्श शिक्षक संगठन बनाने में लगे हैं।

4. शिक्षक हितों के लिए कार्य करने हेतु किसी शिक्षक संगठन चुनने के आपके मानदण्ड क्या रहे ?

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के जुड़े होने के कारण राष्ट्रीय विचार धारा के संगठन से जुड़ना ही एक मात्र विकल्प था। इस कारण सोच विचार की कोई आवश्यता नहीं रही।

5. कर्नाटक राज्य में शिक्षा व शिक्षक की स्थिति के विषय में आपका सोच क्या है ?

कर्नाटक में स्थिति समीप के अन्य राज्यों जैसी ही है। शिक्षकों के वेतन व सेवा शर्तो को लेकर निरन्तर संघर्ष करना पड़ रहा है। अभी आदर्श स्थिति नहीं बनी है। राष्ट्रीय विचारधारा का संगठन होने के कारण हम चाहते हैं कि शिक्षक गुरु के रूप में कार्य करें। विद्यार्थी को मात्र नौकरी के लिए तैयार नहीं कर उसके स्वाभाविक विकास के लिए कार्य करें।

6. आँकड़े बताते हैं कि भारत में स्कूली शिक्षा की उपलब्धि चिन्ताजनक है। आठ वर्ष स्कूल में रहने के बाद भी बच्चों का एक बड़ा प्रतिशत मातृभाषा में लिखी पुस्तक ठीक से नहीं पढ़ पाता। आपकी दृष्टि में इसका क्या कारण है ?

शिक्षा का तेजी से विस्तार हुआ है मगर उसके अनुरूप संसाधन विकसित नहीं हुए है। शिक्षक, शिक्षा का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण घटक है। शिक्षकों के चयन की प्रभावी विधि हम नहीं खोज पाए हैं। सरकार शिक्षा को बालकेन्द्रित करने में असफल रहीं है। शिक्षा अभी भी व्यवस्था केन्द्रित ही बनी हुई है।

7. शिक्षाविदों का मानना है कि शिक्षा मातृभाषा में ही सही होती है मगर देश में अंग्रेजी माध्यम विद्यालयों की संख्या बढ़ती जा रही है। आप क्या सोचते हैं ?

वैसे तो सम्पूर्ण शिक्षा मातृभाषा में होनी चाहिए। अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ प्राथमिक शिक्षा अनिवार्यत: मात्र भाषा में देने की माँग करता रहा है। कर्नाटक में येदुरप्पा के नेतृत्व में भाजपा सरकार ने प्राथमिक शिक्षा अनिवार्यत: मातृभाषा में देने का कानून बनाया था, मगर

उच्चतम न्यायालय ने उसे स्वीकार नहीं किया।

8. माध्यमिक शिक्षा आयोग से लेकर प्रोफेसर यशपाल कमेटी तक ने कहा है कि स्कूली शिक्षा पर उच्च शिक्षा हावी है। 2000 की स्कूली शिक्षा की रूपरेखा में कहा गया कि माध्यमिक शिक्षा की पूरी जिम्मेदारी स्कूल शिक्षकों के सम्भालें बिना भारत में शिक्षा को मजबूत आधार नहीं मिल सकता। स्कूली शिक्षा को मजबूत करने का क्या उपाय हो ?

सही बात है, मैकाले ने शिक्षा को नौकरी से जोड़ा था। आज भी स्थिति वैसी ही बनी हुई है। शिक्षा का ध्येय अच्छा नागरिक तैयार करना नहीं होकर नौकरी पाना हो गया है। सम्पूर्ण शिक्षा प्रणाली नौकरी पाने की प्रतियोगिता जीतने का उपाय बन कर रह गई है। इसी कारण पाठ्यचर्या पूरी तरह सैद्धान्तिक व भारी भरकम बनती जा रही है। इसे युक्तियुक्त बनाना बहुत आवश्यक है।

8. नई शिक्षा नीति लिखी जा रही है। आप शिक्षा नीति से क्या अपेक्षाएँ रखते हैं ?

देश में पहली बार राष्ट्रीय विचारों वाले दल की सरकार बनी है। इससे बहुत आशाएँ है। सबसे बड़ी उम्मीद तो यह है कि नई शिक्षा नीति में शिक्षा को सामान्य प्रशासन निकाल कर पूर्णत: स्वतन्त्र शैक्षिक नियामक तन्त्र के अन्तर्गत किए जाने की आशा है। इससे शिक्षा में राजनैतिक हस्तक्षेप समाप्त होगा। शिक्षा के सभी फैसले शिक्षाविदों द्वारा किए जा सकेंगे।

10. शिक्षकों की सेवाशर्तों में कौनसे सुधार अभी भी अपेक्षित है ?

शिक्षा समवर्ती सूची का विषय होने के कारण अलग-अलग राज्यों में शिक्षकों के वेतनमान व सेवा शर्ते अलग-अलग हैं। हम चाहते कि देश के सभी शिक्षकों की सेवा शर्ते व वेतनमान केन्द्रीय विद्यालयों के शिक्षकों के समान हो।

11. क्या वर्तमान भारतीय समाज में शिक्षक सम्मान का संरक्षण कठिन नहीं होता जा रहा ?

ऐसा लगता है, यह पूरा सच नहीं है। आज भी अधिकांश शिक्षक निष्ठा से अपना दायित्व निभा रहे हैं। ऐसे शिक्षकों को समाज में सम्मान भी मिल रहा है। शिक्षक सम्मान को प्रतिष्ठित करने के लिए शैक्षिक महासंघ बहुत महत्त्वपूर्ण योजना शिक्षा-भूषण सम्मान चला रहा है। शिक्षा क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य करने वाले शिक्षकों को खोजकर प्रति वर्ष तीन शिक्षकों अखिल भारतीय समारोह में सम्मानित किया जाता है। एक-एक लाख रुपए की राशि प्रदान की जाती है। व्यापक भागीदारी हेतु प्रति शिक्षक 100 रुपए के अनुदान से स्थायी कोष स्थापित किया गया है। गुरु पूर्णिमा पर गुरुवंदन कार्यक्रम पूरे देश में उपशाखा स्तर तक आयोजित किया जाता है। इस अवसर पर देश की गौरवशाली गुरु परम्परा पर चर्चा कर प्रेरणा ग्रहण की जाती है।

12. देश के शिक्षकों से आप क्या कहना चाहेंगे?

भारत की संस्कृति विश्व की प्राचीनतम, सुविकसित व वैज्ञानिक सोच वाली संस्कृति है। उपभोक्तावाद को आधुनिकता मानकर हम अपनी संस्कृति से दूर होते जा रहे हैं। इसी से 'क्लाईमेट चेन्ज' जैसी समस्या उत्पन्न हुई है। आज भारत नहीं सम्पूर्ण विश्व को भारतीय संस्कृति को अपनाने की आवश्यकता है। यह शिक्षा के माध्यम से ही संभव है। शिक्षकों को चाहिए कि वे अपने को वेतनधारी कर्मचारी नहीं मानकर समाज का सर्वाधिक जिम्मेदार नागरिक माने। वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना से अनुप्राणित भारतीय संस्कृति को पुन: प्रतिष्ठित करने का कार्य करें। ❑

शैक्षिक मंथन मासिक सम्बन्धी विवरण

घोषणा पत्र फार्म-4 (नियम 8 के अनुसार)

1. प्रकाशन स्थान	जयपुर
2. प्रकाशन अवधि	मासिक
3. मुद्रक का नाम	**महेन्द्र कपूर**
(क्या भारत का नागरिक है)	हाँ भारती भवन, बी-15, न्यू कॉलोनी, जयपुर (राज.)302001
4. प्रकाशक का नाम	**महेन्द्र कपूर**
(क्या भारत का नागरिक है)	हाँ भारती भवन, बी-15, न्यू कॉलोनी, जयपुर (राज.)302001
5. सम्पादक का नाम	**सन्तोष पाण्डेय**
(क्या भारत का नागरिक है)	हाँ डी-27, शांति पथ, तिलक नगर, जयपुर(राज.)302004

6. उन व्यक्तियों के नाम व पते जो समाचार पत्र की समस्त पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक के हिस्सेदार हों। - **शैक्षिक मंथन संस्थान, जयपुर**

मैं महेन्द्र कपूर एतद् द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिये गये विवरण सत्य हैं।

दिनांक 1.3.2018

ह0/-

प्रकाशक

गतिविधि 'वसुधैव कुटुम्बकम्' विषयक अन्तरराष्ट्रीय सम्मेलन नई दिल्ली में सम्पन्न

शैक्षिक फाउण्डेशन एवं आर्यभट्ट महाविद्यालय, नई दिल्ली के संयुक्त तत्वावधान में दिनांक 24-25 फरवरी, 2018 को अन्तरराष्ट्रीय सम्मेलन 'वसुधैव कुटुम्बकम्' आयोजित किया गया। नई दिल्ली के एनडीएमसी कन्वेंशन सेन्टर में आयोजित इस सम्मेलन का उद्घाटन भारत सरकार की जल एवं स्वच्छता मंत्री सुश्री उमाश्री भारती ने किया। उन्होंने उद्बोधन देते हुए कहा कि यह आर्थिक उदारवाद का दौर है। हम आर्थिक रूप से एक परिवार हो गए हैं, लेकिन यह एक न्यूक्लियर फैमिली का स्वरूप है जो 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का रूप नहीं है। हमें इस दर्शन के मूल भाव/स्वरूप को समझना होगा। पश्चिम में केवल अन्धेरा ही नहीं है, वहाँ प्रकाश भी है जिसे अपनाने की जरूरत है। भारत इसी भाव से आगे बढ़ता है और 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की विचारधारा को पल्लवित-पोषित करता है। हम देश की सीमाओं पर उदार नहीं हो सकते हैं, लेकिन धर्म और संस्कृति के मामले में हमेशा से उदार रहे हैं और हो सकते हैं। एक व्यक्ति का दूसरे के प्रति, एक धर्म का दूसरे धर्म के प्रति, एक आस्था का दूसरे की आस्था के प्रति सम्मान का भाव ही उदारता है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के दर्शन को विश्व में प्रसारित करने के लिए इस उदारता को वैश्विक पटल पर समझाना होगा। भारत इस क्षेत्र में प्राचीन काल से निरंतर कार्य कर रहा है। शायद यही कारण है कि हमारी संस्कृति किताबों में नहीं लोगों की जीवन शैली में बसी है जिसमें लोगों का आत्मबल, नैतिक बल और स्वाभिमान दिखता है। अपने इसी बल के कारण भारत विश्व गुरु है।

उद्घाटन सत्र का शुभारंभ मंचस्थ विद्वानों द्वारा द्वीप प्रज्वलन एवं माँ शारदे की वन्दना से हुआ। इस सत्र में महासंघ के अध्यक्ष जे.पी. सिंघल ने स्वागत संबोधन का आरम्भ यह कहते हुए किया कि आज हम जिस दौर में हैं वह प्रतिस्पर्द्धा का दौर है। यह प्रतिस्पर्द्धा हर क्षेत्र में है, लेकिन ज्यादातर यह नकारात्मक ही है। सकारात्मक प्रतिस्पर्द्धा की आज नितांत आवश्यकता है जो 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना और विचारधारा दर्शन से ही आ सकती है। भारतीय वैदिक वाङ्मय 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के दर्शन का आदि स्रोत है। प्रेम 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का केन्द्रीय तत्व है, तो सहिष्णुता इसका मूर्त भाव। भारत इसी कारण पूरे विश्व को एक परिवार मानता है। उद्घाटन सत्र की अध्यक्षता शैक्षिक फाउण्डेशन के अध्यक्ष प्रो. के. नरहरि ने की।

उद्घाटन सत्र में अतिथियों द्वारा शैक्षिक फाउण्डेशन द्वारा प्रकाशित स्मारिका 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का विमोचन किया गया। स्मारिका में देश के जाने माने चिंतकों एवं विद्वानों के लेख एवं शोध सारों का संकलन है। सत्र के अंत में सम्मेलन के संयोजक डॉ. मनोज सिन्हा ने धन्यवाद ज्ञापित किया।

25 फरवरी 2018 के प्रथम पूर्ण सत्र की अध्यक्षता विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (मध्य प्रदेश) के कुलपति श्री एस.एस. पाण्डे द्वारा की गयी। प्रथम सत्र के मुख्य वक्ता पूर्व केन्द्रीय मंत्री श्री आरिफ मोहम्मद खान ने 'भारत की साभ्यतिक विरासत एवं वैश्विक शांति' विषय पर ज्ञानवर्धक एवं पथ-प्रदर्शक वक्तव्य से कॉंफ्रेंस को प्रारम्भ किया। अपने उद्बोधन में श्री आरिफ खान ने 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की अवधारणा को प्राचीन भारतीय दर्शन एवं संस्कृति के माध्यम से प्रस्तुत किया। विभिन्न मंत्र, श्लोक, दोहों के साथ-साथ आधुनिक रूप से स्वामी विवेकानन्द जी के कथनात्मक संदर्भों का समायोजन विषय की सिद्धि एवं प्रस्तुति के प्रमुख बिन्दु रहे। महाभारत एवं अन्य सनातनी ग्रंथों की विषय वस्तु की विशालता पर बोलते हुए श्री आरिफ खान ने कई जन्मों को भी इन्हें समझने के लिए कम बताया। उन्होंने कहा कि संस्कृति की पहचान संस्कृत वाङ्मय है। उन्होंने श्रोताओं के प्रश्नों का समाधान भी बखूबी किया।

विभिन्न समांतर सत्रों में भिन्न-भिन्न विषयों को लेकर वक्ताओं एवं शोध विशेषज्ञों ने अपने-अपने विचार प्रस्तुत किये, जिनमें इग्नू के प्रोफेसर दरवेश गोपाल ने 'सतत विकास की अवधारणा', सरगुजा विश्वविद्यालय के प्रोफेसर मधुर मोहन रंगा ने 'पर्यावरण', दिल्ली विश्वविद्यालय के डॉ. वी.के. गौतम ने विज्ञान, नीतिशास्त्र, ज्ञान एवं स्वास्थ्य, आई.आई.एम.सी. के डायरेक्टर जनरल श्री के.जी. सुरेश ने 'समृद्धि के सहयोग' एवं प्रो. सी.बी. शर्मा, राष्ट्रीय मुक्त विद्यालय संस्थान, नई दिल्ली ने 'संस्कृति की वैविध्यपूर्ण एकता' पर अपने शोधपरक तथा बहुमूल्य विचारों से मुख्य वक्तव्य प्रस्तुत किया। इन समांतर सत्रों की अध्यक्षता क्रमशः प्रो. बलराम सिंह, निदेशक, इंडिक अध्ययन संस्थान (यू.एस.ए.), डॉ. बी.एल. शर्मा कुलपति दीनदयाल उपाध्याय शेखावाटी विश्वविद्यालय, सीकर (राज.), प्रो. मदन गुप्ता, कनाडा, प्रोफेसर अशोक शर्मा, कुलपति वर्धमान महावीर मुक्त विश्वविद्यालय, कोटा (राजस्थान), प्रोफेसर कैलाश सोडानी, कुलपति, गोविन्द गुरु जनजातीय विश्वविद्यालय, बांसवाड़ा (राजस्थान) एवं प्रोफेसर रवि टेकचंदानी, निदेशक, सिन्धी भाषा विकास अकादमी, एम.एच.आर.डी., नई दिल्ली ने की।

अन्तरराष्ट्रीय सम्मेलन के समापन सत्र की अध्यक्षता महासंघ के अध्यक्ष जे.पी. सिंघल ने की। इस सत्र के मुख्य अतिथि माननीय सांसद भूपेन्द्र यादव रहे। समापन सत्र पर मुख्य वक्ता प्रमुख शिक्षाविद् श्री अनिरुद्ध देशपाण्डे का सम्बोधन 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की अविरल धारा में मील का पत्थर साबित होगा। अपनी वैचारिकी से उन्होंने भारतीय मूल्यों को भारतीय संस्कृति की अमिट धरोहर बताया। श्री देशपाण्डे ने कहा कि हमारे नैतिक मूल्य ही हमें औरों से पृथक् करते हैं। यह हमारी नैतिक जिम्मेदारी भी बनती है कि हम अपनी संकल्पधारा के माध्यम से सम्पूर्ण वसुधा को एक परिवार की तरह संजोकर चलें।

सम्मेलन की इतिश्री धन्यवाद ज्ञापन के साथ हुई, जिसमें आर्यभट्ट महाविद्यालय के प्राचार्य डॉ. मनोज सिन्हा ने सभी विद्वज्जनों का धन्यवाद ज्ञापित किया। इस सम्मेलन में देश-विदेश के चार सौ से अधिक विद्वानों - शोधार्थियों ने भाग लिया तथा केन्द्रीय विषय एवं उपविषयों से संबंधित 80 से अधिक शोध पत्रों का प्रस्तुतीकरण किया गया।